ग्रन्थमाला सम्पादक-नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन
प्रकाशक
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशी
मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी
प्रथम संस्करण १९६२
मूल्य ३ रु० २५ न० पै०

कहानी-क्रम

•

प्यार के बन्धन

प्यारके कारन

प्रिय सरिता,

बहुत मोच-विचारके बाद इस निश्चयपर पहुँचा कि लिखूँ ही। तीन दिनके आतिथ्यमे तुम्हारे घरमें जो कुछ ... अहृदय, अकृतज्ञकी तरह चुपचाप पी जाऊँ, यह ... एक अक्षम्य अपराध होगा।

यदि कहूँ कि मैने तुम्हे नही समझा तो सम्भव ... और इससे तुम्हारे हृदयको गहरा आघात भी पहुँचे, और ... समझ लिया है तो भी सम्भव है गलतीपर होऊँ। तुम ... परम्परावादी परिवारकी वधू हो। घर आये अपने अपरिचित ... सम्मुख आना और बात करना तुम्हारे लिए वर्जित, कुल-मर्यादा ... किन्तु यह मर्यादा सम्भवत बुद्धि और वाणीके लिए है, हृदय और आँखोंके लिए नही। तभी तुमने अपनी आँखो और सम्भवत हृदयसे भी उसका उल्लघन किया है। तीन दिन तक मेरे मध्याह्न-विश्रामके समय घण्टों अतिथि-कक्षके सामने अपने बरामदेमे बैठकर तुमने सिलाई-कढ़ाईका कौन-कौन-सा काम किया है, मै नही जान पाया, किन्तु उस बीच अपनी ... दृष्टिका जो दान तुमने मुझे दिया है वह मुझे ज्ञात है। तुम्हारी उन आँखो मे क्या-क्या था? अनुराग, श्रद्धा, समर्पण, वेदना, दुविधा, विवशता! जो-कुछ भी उनमे था, उसे मैने कृतज्ञ भावसे स्वीकार किया था और इन लिखित शब्दोमें पुन स्वीकार करता हूँ। किन्तु आवश्यक है कि तुम्हारी आँखोकी उस भेंटको, जिसे मैने स्वीकार कर अपने हृदयमे प्रतिष्ठित किया

है, एक बार और तुम्हारे अवलोकनके लिए प्रस्तुत करूँ। सम्भव है मैंने उसे यथार्थ रूपमे न समझा हो और सम्भव है स्वय तुम्हारे सामने वह पूर्णतया स्पष्ट न हो। इस पुनरवलोकनमे परिस्थितिको समझने और निभानेमे तुम्हे सहायता मिलेगी।

तुम सुन्दर हो—बहुत सुन्दर—किन्तु इतनी नही कि तुम्हारे समान मैंने कोई दूसरी देखी न हो। तुमसे भी अधिक सुन्दर कुछ तरुणियाँ मैंने देखी है और उनके प्रति अनाकृष्ट रहा हूँ। किन्तु तुम्हारी आँखोने मुझे आकृष्ट, उद्वेलित और फिर अनुप्राणित भी किया है। इसका अर्थ यह है कि तुम्हारे बाह्य सौन्दर्यके पीछे आन्तरिक मुग्धताका सौन्दर्य भी है। मुग्धता और लज्जा नारीके दो प्रमुख आभूषण है और मुग्धताका स्थान उनमे सर्वोपरि है। मुग्धताका गुण तुममे सजग है, यह तुम्हारे उस दृष्टि-निवेदनका एक सामान्य, मनोनियमित अर्थ है, उसका कुछ और गहरा एव वैयक्तिक अर्थ भी हो सकता है।

तुम्हारी आँखोमे वह क्या था? क्या वह प्रेम था? वह तुम्हारी ओरसे प्रेमका दान था या प्रेमकी याचना, प्रेमकी कसक थी या प्रेमकी परितृप्ति? वह रूप था, या उसी स्तरके किसी अन्य पुरुष-सुलभ गुणका आकर्षण था, या उससे परेकी कोई अज्ञातकारण लगन थी? मनुष्यके हृदयमें नवीन और अन्य—जो प्राप्त है उससे भिन्न—के प्रति भी एक ललक होती है, और सामान्यसे उठकर महान्‌के, प्राप्तसे आगे चलकर आराध्यके प्रति उपासनाकी भी साध होती है। पहली ललक छिछली है—वह उसे आगे नही ले जाती, भँवरमें डाल देती है, दूसरी साध उसके चिर-विकासका पथ है। अन्यता और विविधताकी चाहका मार्ग बोझिल और पकिल है, तो श्रेष्ठतर आराध्यकी उपासनाका पथ भी बहुत कटकाकीर्ण है। तुम्हें मनको शान्त कर यह समझनेका प्रयत्न करना चाहिए कि तुम्हारी वह चाह इन दोमें-से किस स्तरकी है।

तुम्हारे घरसे लौटे आज छठा दिन है। इन पक्तियोके तुम्हारे सामने

पहुँचनेमे लगभग एक महीना और लग जायेगा। [illegible]
समयमे देखना मेरे प्रति तुम्हारी प्रेम-वेदनामे [illegible] है [illegible]
नही। जानता हूँ कि [illegible] अन्तरको पत्र लिखना [illegible] तुम्हारे [illegible]
होगा। तुमने काम ही ऐसा किया है। तुम्हारे [illegible]
कमरेके सामने गिरा हुआ तुम्हारा रूमाल मैने देखा [illegible]
लिया था कि वह तुम्हारी आँखोके [illegible]
था और उसमे तुम्हारे आँसू थे। [illegible] —
मैने वह रूमाल नौकरको बताकर उसके [illegible] तुम्हारे [illegible]
था। लेकिन वह मेरे लिए ही तुम्हारी भेंट थी, [illegible]
जब यहाँ पहुँचनेपर वह दोवारा मेरे विस्मय[illegible] [illegible]
प्रेम-निवेदनमे तुम कितनी पटु और साहसी हो। तुम्हारा [illegible]
वह रूमाल जबतक मेरे पास रहे, तबतक तुम्हारी प्रेम [illegible]
या कमसे-कम उस कमीका लक्षित होना लगभग असम्भव [illegible]
अनजाने तुमने यह एक समर्थ मान्त्रिक, बल्कि तान्त्रिक [illegible]
है। तुम पहले ही परिवार और लोक-मर्यादाके बन्धनमे हो, [illegible]
प्रति तुम्हारा यह आकर्षण क्या एक और बन्धन नही है?

मुक्तिकी कामनामे तुम दोहरे बन्धनको पीटा न दे बैठो, इसकी मुझे चिन्ता है। इसीलिए इस पत्रको लिखनेसे पहले आज सुबह मैने एक छोटा-सा उपचार किया है। तुम्हारे उन आँसुओको मैने अपने हृदयमे सँजोकर रख लिया है और उस रूमालको अपनी वाटिकाके पाँच गुलाब पुष्पोपर लपेटकर गगामे प्रवाहित कर दिया है। तुम्हारी स्मृतिका वह मान्त्रिक सूत्र अब मेरे और तुम्हारे बीच नही है। चाहता हूँ कि तुम लौट सको तो लौट जाओ, मुझे भूल सको तो भूल जाओ। यह विसर्जन मैने तुम्हारे हितके लिए ही किया है, अन्यथा न समझना।

इन पाँच सप्ताहो में न दीखा हो तो अगले पाँच महीनोमें देखना तुम्हारी वेदनामे कोई कमी आती है या नही। जो कुछ मैने तुम्हारी

आँखोमे देखा है वह तीव्र है, असाधारण है, फिर भी हो सकता है आँखोकी ही प्यास हो। यदि वह केवल आँखोकी प्यास है तो अपने आप कुछ समयमे शान्त हो जायेगी और यदि हृदयकी गहरी प्रीति है तो जगेगी और सफल होगी। इसीलिए मेरी विनय है कि तुम मेरे समीप आनेके लिए—मन-ही-मन आनेके लिए भी—कोई प्रयास या साहस न करना। हृदयकी प्रीति, जब वह आँखोके आकर्षणसे परे किसी गहरे सस्कारकी जनी होती है तो अपना मार्ग स्वय निष्प्रयास ही बना लेती है।

पत्रको बहुत अधूरा ही समाप्त कर रहा हूँ, किन्तु आगेकी बात अभी कहनी भी नही है। तुम्हारे पास इस पत्रको भेजनेका साधन भी होता तो भी मैं न भेजता। इस पत्रको तुम्हारे पास ऐसे ही भेजकर मैं प्रचलित लोक-मर्यादा और तुम्हारे स्वजनोकी भावनाओको तनिक भी असम्मानित नही करना चाहता। इसलिए जिस पत्रिकामें यह पत्र छपे उसकी एक प्रति तुम्हारे हाथो तक पहुँच जाये, इतना ही प्रयत्न करूँगा। तुम्हारा और अपना जो नया नामकरण मैंने इस पत्रमें किया है वह भी इसीलिए अनिवार्य था। साल-छह महीनेके बाद आवश्यक हुआ तो अपनी बातका उत्तरार्द्ध भी तुम्हारे सामने प्रस्तुत करनेका ऐसा ही कोई उपाय करूँगा। पुन अनुरोध है कि तुम अपनी पारिवारिक प्रियतामे मन लगाकर मुझे भूलनेका प्रयत्न करना, अलबत्ता जो कुछ इन दिनो तुम्हारे मनमे आया हो उसे कभी भी अश्रद्धा या उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखना, क्योकि वह भी पवित्र है। बस, प्यार।

तुम्हारा
स० सागर

मेरे सागर,

पांच महीनेके तुम्हारे आदेशका पालन करनेके बाद अब यह पत्र लिख रही हूँ। मेरे मनमें जो कुछ जागा था वह केवल आँखोकी प्यास थी या हृदयकी प्रीति, अभीतक नही जान पायी हूँ। किन्तु मेरी विवशता बढी है। तुम्हें भूलनेका जितना ही प्रयत्न किया, याद उतनी ही प्रबल होती गयी। मुझे लगता है कि यह प्रेम नही, कोई निकृष्ट रोग है। 'प्रेम' शब्दको स्वय-पर घटाकर मै कलकित नही करना चाहती। तुम्हारा-मेरा कोई नाता नही। परपुरुष-प्रेमको मैने सदैव जघन्य पाप समझा है। जो विवाहिता लडकियाँ पडोसी प्रेमीके साथ भाग जाती है, उन्हें मैने सदैव घृणाकी दृष्टिसे देखा है। आज स्वयको भी उन्हींमें पाती हूँ। तनसे नही तो मनसे मेरा भी वैसा ही पतन हो चुका है। आत्म-ग्लानिमे बहुत जल चुकी हूँ और अब उसकी आग धीमी पड गयी है। तुम्हारे लिए जो कुछ मेरे मनमे जागा है उससे मै सुखी नही हूँ, पर हूँ उसीके पाशमें। तुमसे बँधकर मैने अपने पति और अपने नारीत्वके प्रति भयङ्कर विश्वासघात और अक्षम्य अपराध किया है—यह धारणा मेरे मनसे निकल नही पाती, और तुम कहते हो कि वह पवित्र है, उसे अश्रद्धा और उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखूँ।

मेरी भेंट तुमने गगामें प्रवाहित कर दी, यह अच्छा किया। इससे मुझे कुछ बल मिला। अपने समीप आनेका साहस और कोई प्रयास न करनेका तुमने जो आदेश दिया, वह बहुत ही अच्छा किया। अन्यथा सम्भव था कि मै तुम्हें पानेके कुछ उपाय सोचती या घर और कुल-शीलके पहरे तोडकर तुम्हारी खोजमे निकल पडती। किन्तु यह सरिता और सागर! मेरे और अपने नये नाम तुम्हें रखने ही थे तो क्या नामोके कोशमे कोई दूसरे नाम नही थे? इस नामकरणद्वारा क्या तुमने यही सकेत नही किया कि तुम्हारे सिवा मेरी अन्य गति नही है? मुझे बाँध रखनेका क्या यह मेरे रूमालसे सहस्रगुना सबल तुम्हारा एक मान्त्रिक प्रयोग नही है?

मैने तुम्हें क्या दिया, नही जानती, किन्तु तुमने मुझे जो कुछ दिया है

उसे अपने प्राणोके मोल खरीदकर मैने रख लिया है और उससे विलग नही हो सकती। रोग-शय्यापर तकियेका महारा लेकर यह पत्र लिख रही हूँ।

माहस मैने किया नही था, किन्तु दो माम पूर्व वह अनायाम ही मुझसे वन गया था। पतिके सामने मैने अपना मन खोल दिया था। जितनी भो यातनाएँ और यन्त्रणाए उनके पाम मेरी आत्मशुद्धिके लिए हो मकती थी, उन्होने मुझे दी। तभीसे रोग-शय्यापर हूँ—उनके किये हुए किमी उपचारमे नही, अपने ही भीतरकी अग्निसे झुलमकर। डाक्टर कहते है टी० वी० नही है, एक विशेप प्रकारकी मन्दाग्नि है जिमने भूख-प्यासको मारकर रक्तका वनना वन्द कर दिया है। मेरे पतिको अव मेरे जीवनकी चिन्ता है। चाहते है मै मरूँ नही। उनकी आंखोमे क्षमा और करुणाकी एक नयी तरलता मैने इन दिनो देखी है। इस पत्रको लिखनेके लिए कागज़-कलम उन्होने ही लाकर मुझे दिया है।

मेरी प्रार्थना है कि तुम एक पत्र उसी पत्रिकाके लिए और लिखो। उसमें वताओ कि यह अनचाहा प्रेम क्यो हो जाता है। धर्म और लोक-मर्यादाके घातक इस प्रेमका—या आँखोकी प्यासका, यदि यही नाम तुम इसे देना चाहो—यदि जीवनमें कोई उपयोगी स्थान भी हो सकता है तो क्या और कैसे ? इसके आक्रमणसे होनेवाली पीडा और अशान्तिसे वचनेका क्या उपाय है ? क्या ऐसी कोई वैवाहिक-पारिवारिक व्यवस्था हो सकती है जिसमें ऐसे प्रेमको भी स्थान दिया जा सके और मनुष्यका नैतिक-आत्मिक विकास भी साथ-साथ चल सके ? तुम्हारा ऐमा पत्र मुझे और मुझ जैसी और भी अभागिनोको प्रकाश दे सकता है। इसलिए वह मेरी व्यक्तिगत नही, साहित्य और समाजकी सम्पत्ति होनी चाहिए। तुम उसे पत्रिकाके लिए लिखो। किन्तु एक मास तक उसकी प्रतीक्षा मेरेलिए दुस्साध्य होगी। इमलिए चाहती हूँ कि उसकी एक प्रति अपने हाथो लिख-कर मेरे पास डाकसे भेज दो। सम्भव है एक महीना अव जी न सकूँ। मरनेसे पहले शान्ति चाहती हूँ, शायद तुम्हारे पत्रसे मिल सके। और

शान्तिमे भी पहले सम्भवत तुम्हे एक बार प्रत्यक्ष देखना चाहती हूँ। कल्पनामे अपनी आँखोमे, होठोमे और हृदयसे तुम्हारे मिलनका रस मैंने इन दिनो असख्य बार पिया है। एक बार वह सदेह मिल जाये तो

इतनी उग्र होते भी बात मेरे और मेरे पतिके बीचतक ही सीमित रही है। मेरे सास-ससुरसे भी इन्होने नही बतायी है। इसे इनकी महानता ही मानती हूँ। तुम आओ ' इन्हें आपत्ति न होगी, सम्भव है पसन्द करें।

दोनोकी प्रतीक्षा है। देखूँ, पहले कौन मिलता है—पत्र या तुम ?

तुम्हारी
सरिता

०

मेरी पूर्णिमा,

पत्र मिला। अपनी प्रीतिकी सफलतामें अब भी तुम्हें कोई सन्देह है ? तुम देख नही रही हो कि उसने अपनी पूर्त्तिकी राह किस अदम्य गतिसे निकाली है ? अपने पतिके कठोर हृदयको, उनकी रूढ धारणाको तुमने गला दिया है, यह तुम्हारी सबसे बडी विजय है। निस्सन्देह तुमने उन्हे उनकी महानता दिखा दी है। प्रेमका इससे बडा उपयोग और क्या हो सकता है कि वह कठोरको कोमल बनाकर समाजके लिए हार्दिक औदार्यका विकास करे।

तुम्हारी आत्मग्लानि तुम्हारे पूर्व-सस्कारोकी प्रतिक्रिया है। वे तुम्हारे निजी नही, पुरातन रूढिवादी समाजके सस्कार है, जो तुम्हारे मनपर प्रतिबिम्बित हुए है। तुमने कुछ भी बुरा नही किया है। अपने पतिके प्रति विश्वासघात नही, गहरे विश्वासका सूत्रपात ही तुमने किया है। नारीत्वका तुमने मागलिक शृङ्गार किया है।

प्रेम अनचाहा कभी नही होता। वह सदैव मनुष्यकी अन्तरतम, प्राय अज्ञात मांगकी पूर्ति बनकर आता है। धर्म और लोक-मर्यादाका परिष्कार

वही करता है, अन्यथा जीवनको प्रगति उनके पुराने ढाँचोंमें जकड़कर समाप्त हो जाये। मेरे प्रति तुम्हारा आकर्षण अकारण या अनायास नहीं था। व्यक्तिगत रूपसे भले ही तुमने मुझे पहली बार ही देखा था, किन्तु मेरे जैसे व्यक्तिके लिए अनुराग पहले ही तुम्हारे मनमें भीतर-ही-भीतर पल रहा था—इसे देखनेमें तुम्हें अब कठिनाई न होगी। अनायास दीखनेवाले प्रेमकी भीतर-ही-भीतर एक लम्बी रेखा होती है।

प्रेम और सामाजिक व्यवस्थाके बीच प्रश्न बहुत हैं। कुछ तुमने पूछे हैं, किन्तु उनके उत्तर देनेका यह स्थान नहीं है। अभी इतना ही कहूँगा कि मुक्त प्रेम और सामाजिक मर्यादा बहुत दूरतक साथ-साथ चल सकते हैं। उनका आन्तरिक अभिप्राय यही है कि वे एक-दूसरेके सहायक हों। तुम्हारे संकेतके अनुसार मैं वह पत्र लिखूँगा, लेकिन उसकी जल्दी अब नहीं है। पहली आवश्यकता यह है कि तुमने जो महान् व्रत अभी पूरा किया है उसका पथ्य लो। रोग तुम्हें कोई नहीं है। तुम्हारी शारीरिक कृशता उस तपका स्वाभाविक परिणाम है। इसके पश्चात् तुम्हारे तन और मन भरकर कुन्दनकी तरह निखरेंगे। तुम्हारी आँखोंको, होठोंको, बाँहोंको वह सब मिलना चाहिए जिसकी तुमने कामना की है। तुम्हारी वह साध तुम्हारे ही पोषणके लिए नहीं, मेरी भी पूर्तिके लिए है। तुम्हारे पथ्यका जो भाग मेरे पास है उसे लेकर मैं शीघ्र ही इसी शनिवारको शामकी गाड़ीसे तुम्हारे पास आ रहा हूँ। आशा है विजय बाबू अपनी कार लेकर मुझे स्टेशनपर मिलेंगे। उनका-मेरा सम्पर्क बहुत कम हुआ है। फिर भी उनके माता-पिताका जो स्नेह मुझपर है उस नाते उन्हें भी मैंने सदैव अपना स्वजन माना है। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम अब उनका भी है और उसकी सार्थकता तुम स्वयंको उनके और भी समीप पाकर देखोगी।

प्रथम दर्शनके समयसे ही,

तुम्हारा अभिन्न
अखिल

❦

आँखका परदा

आदरणीय भाई,

अलग रजिस्टर्ड पैकेटमें शकुन्तलाके नाम उसकी एक पुस्तक लौटा रही हूँ। वह बनारस चली गयी हो तो पता बदलकर इसे उसके पास भेज दीजिएगा। पुस्तक उसके लिए आवश्यक है और मुझे लौटानेमें कुछ देर लग गयी है। बनारसका उसका पता मुझे भी लिखनेकी कृपा कीजिएगा। कष्टके लिए क्षमा कीजिएगा।

१५-६-१९५२]

विनीता
प्रियंवदा

•

प्रिय बहन,

पत्र मिला। पैकेट मैंने शकुन्तलाके पास बनारस भेज दिया है। बनारसका उसका पता है ११, अमिताभ रोड, बनारस। हमारे जिन बड़े भाई साहबके साथ वह है उनका नाम है बाबू नवलकिशोर, आप जानती ही होंगी।

जिस समय आपका पोस्टकार्ड मुझे मिला, एक विशेष प्रश्न मेरे मस्तिष्कमें था। आप कुछ साहस और समझदारीसे काम ले सकें तो उसके हल करनेमें मुझे बड़ी सहायता दे सकती हैं। मथुरामें अपने घरपर मैंने शकुन्तलाके साथ आपको कई बार देखा है। आपने मुझे कभी एक बार प्रणाम तक नहीं किया, जब कि आप जानती थीं कि मैं शकुन्तलाका भाई

हूँ और उससे, और निस्सन्देह आपसे भी, आयुमे बडा हूँ। शकुन्तलाका बनारसका पता जाननेके लिए—केवल इतने छोटेमे स्वार्थके लिए—आपने मुझे 'आदरणीय भाई' बना लिया। आप मुझे आदरणीय भाई न लिखकर महाशय, महोदय अथवा श्रीमान्जी शब्दमे सम्बोधित करती, तब भी मै आपको शकुन्तलाका पता लिख देता और आपकी भेजी पुस्तक उसके पास भेज देता। अब इसमे दो बातें हैं : या तो आपकी दृष्टिमे 'भाई' शब्द केवल एक शब्द है जिसे अपने परिवारसे बाहरके किसी भी—बुढापेसे नीचेके—व्यक्तिको कुछ लिखते समय शुरूमे लिख देना चाहिए, या फिर इस शब्दकी कुछ भावनापूर्ण सार्थकता भी है। क्या आप मुझे बतायेंगी कि पत्रमे इस शब्दको लिखते समय आपके मनमें मेरे लिए सचमुच कोई वैसी स्पष्ट भावना उठी थी जो एक बहनके हृदयमें किसी नये—पहले—अवसरपर भाईके लिए उठ सकती है ? मुझे भाई लिख कर या तो आपने अपने साहसपूर्ण सौजन्यका परिचय दिया है या फिर लापरवाही अथवा आडम्बरका। मेरे इस प्रश्नका स्पष्ट उत्तर आप दे सकेंगी तो हमारे परिवारोकी एक बडी समस्याको सुलझानेमे मेरी विशेष सहायता करेंगी।

मैंने हृदयसे ही आपको बहन स्वीकार कर लिया है, इसलिए आपको अपने पिछले सम्बोधनमे परिवर्तन करनेकी आवश्यकता नही है। भाई-बहनका नाता अपने परिवारके बाहर भी निभाया जा सकता है और परिवारके बाहर ऐसे नातोके बढाने और निभानेकी हमारे समाजको गहरी आवश्यकता है। आप अब बी० ए० के दूसरे सालमे है। आशा है, मेरे पत्रका उत्तर देना कठिन न होगा।

१६-६-१९५२]

आपका भाई,
शरत्

०

भाई,

आपका कृपापूर्ण पत्र मिला। आपके पत्रने मेरे मनमे जितने विचार उठाये और आपके प्रश्नने मेरे सामने जितनी कठिनाइयाँ उपस्थित की, सम्भव है उनका आपको अनुमान न हो। मैं नही समझ पायी कि आपको क्या उत्तर दूँ। उत्तरमे विलम्बका भी यही कारण है। फिर भी आपके पत्रने मुझे एक नया वल और नया साहस दिया है। मैंने पूरी स्पष्टता और ईमानदारीके साथ आपके प्रश्नोका उत्तर देनेका निश्चय किया है। आपने मुझे अपनी वहन स्वीकार किया, इससे मुझे जितना सुख मिला है उसकी मैं कभी कल्पना भी नही कर सकती थी। मेरे केवल एक छोटा भाई है, पाँच सालका। मुझे सचमुच एक ऐसे वडे भाईकी आवश्यकता थी जो भाईके स्नेहके साथ मेरा पथ-प्रदर्शन कर सके।

मैंने आपको जो पत्र लिखा था वह परिवारके वाहर जानेवाला मेरा पहला ही पत्र था। आपको वह पत्र लिखते समय मेरे मनमे आपके प्रति भाईका कोई भाव नही था। 'भाई'का सम्वोधन चुननेमें मुझे झिझक हुई थी। वह मुझे अस्वाभाविक-सा जान पडा था, और पत्र भेजनेके वादतक अपना वह चुनाव मुझे खटकता रहा था। महाशय या महोदय आदि सम्बोधन मैं चुन नही सकती थी, क्योंकि उनमें वहुत अधिक परायापन लगता था और उचित आदरका अभाव भी। फिर भी मैंने कोई उपयुक्त सम्बोधन न पाकर आपको 'भाई' लिखा था।

मथुरामे आपने जितनी वार मुझे देखा है, उससे कही अधिक वार मैंने आपको देखा है। आपके सामने पडनेपर मैंने सदैव चाहा है कि आप मुझसे कुछ कहें और मैं आपसे वोल सकूं। दो-एक वार अपनी ओरसे ही कुछ कहनेका साहस करके मैं गले तक कुछ शब्द ला पायी थी, लेकिन वोल नही सकी। इसका कारण वहुत-कुछ हमारे घरोकी परदा-प्रथा और सकोच था। मेरी भावनाओकी उलझन भी इसका कारण हो सकती है। फिर भी मैंने कभी भी आपको भाई मानने या कहनेकी इच्छा नही की। आप अव

मुझे बहन बना चुके है और उसकी ऊँची प्रेरणा मुझे मिल चुकी है, इस-लिए सब-कुछ स्पष्ट ही मै आपको लिखूँगी। एक बार आपके घरपर ही आपकी भाभीने एक ज़रूरी काम पडनेपर मुझसे कहा था, "प्रियवदा, जाओ बाहरके कमरेसे अपने शरत् भाई साहबको बुला दो।" शकुन उस समय घरमें नहीं थी। मुझे भाभीका यह वाक्य प्रिय नही लगा। मै कमरेके दरवाज़े तक जाकर वापस लौट आयी। आप कमरेके भीतरसे बाहर खडे हुए किसी आदमीसे बात कर रहे थे और आपको भाई साहब कहकर पुका-रना मुझे प्रिय नही लगा। मैं नही समझती, मेरी इन बातोंमे आप क्या सोचेंगे। फिर भी मेरा विश्वास है, इनसे भी आप मेरे और हमारे समाजके परिवारोके सम्बन्धमे लिखने और करनेके लिए कोई उपयोगी ही बात निकालेंगे। सम्भव है, मेरे भाव इन शब्दोंमें स्पष्ट न हो पाये हो।

पिताजीका दो महीनेके लिए बदायूँको तबादला हो गया है। वे अकेले ही गये हैं। घरपर मैं, माताजी और छोटा भाई सतीश ही है, इसलिए पत्र-व्यवहारके लिए घरका ही पता दे रही हूँ—दफ्तरके पतेसे आनेपर चिट्ठियोंके खोनेका डर है।

२५-६-१९५२]

आपकी बहन
प्रियवदा

●

प्रिय बहन,

पत्र मिला। जिस सुन्दरता, सहृदयता और स्पष्टताके साथ तुमने—आयु और आत्मीयताके विचारसे अब मुझे 'आप'के बदले 'तुम' ही कहना चाहिए—मेरे पत्रका उत्तर दिया है, उसके लिए मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। अपने व्यक्तिगतसे बाहर अपने समाजके सभी परिवारोके हितका भी तुम्हें ध्यान है, यह मेरे लिए विशेष उपयोग और सुखकी बात है। बहुत दिनोंसे मैं अपने सम-वर्गकी—साधारण शिक्षित, किन्तु अपेक्षाकृत गरीब श्रेणी

की—किसी ऐसी लडकीकी खोजमें था जिसका खुला हुआ हार्दिक सहयोग मुझे अपने इस दिशाके काममे मिल सके। ऐसे सहयोगके विना मेरा आगे वढना असम्भव था। वडे घरोकी नयी रोशनीवाली किसी लडकीसे मेरा काम नही सध सकता था। इसके लिए मुझे पुरानी रूढियोमें जकडे साधारण परिवारकी एक पढी-लिखी ऐसी लडकीके सहयोगकी आवश्यकता थी, जो सहारा देनेपर क्रान्तिके क्षेत्रमे कुछ कर सके। अपने पहले क्रियात्मक प्रयत्नमें तुम्हें पाकर मैं विशेष सफल हुआ हूँ।

अपने पहले पत्रमे मुझे 'भाई' लिखकर तुमने हमारे पारिवारिक समाजकी कायरता, विवशता और विचारहीनताका एक उदाहरण रखा है और व्यक्तिगत रूपमें तुम्हारा त्याग और साहस भी उसमे सम्मिलित है। तुम्हारी दृष्टि और भावनाओंसे मैं कभी भी अपरिचित नही रहा हूँ। मैंने भी तुम्हारे वारेमे वहुत सोचा है, वहुत दिनो तक सोचा है। कुछ लडकियोके वीच कहे हुए तुम्हारे शब्द "शरत् वावू-जैसा पति हरेक लडकीको तो नही मिल जायेगा"—तुम्हारे होठोंसे निकले हुए ही मेरे कानोमे भी पड गये थे, शायद यह सुनकर तुम आज चौंको भी। उनका पूरा अर्थ मैंने समझ लिया था। आज वात पडनेपर तुम्हे उसका उत्तर भी दे रहा हूँ कि तुम-जैसी पत्नी हरेक लडकेको नही मिल सकती।

तुम्हारा वह सम्वोधन स्वीकार करनेमे मैंने वहुत जल्दी की है, एक दृष्टिसे तुमपर अन्याय भी किया है, लेकिन यो ही नही, वल्कि जान-वूझकर, एक वहुत वडे कल्याणको सामने रखकर। भाई-वहनका स्नेह पति-पत्नी या प्रिय-प्रेमीके प्रेमसे कम सरस और, कह सकते है, कम 'मादक' भी नही है। यह कभी नही कहा जा सकेगा कि इस प्रकारके स्नेह और उस प्रकारके प्रेममें कौन-सा अधिक सुखद और उपयोगी है। इतना अवश्य है कि उस प्रेमकी गहराइयोमें जानेवाले वहुत हुए है और इस स्नेहकी गहराइयां अभी वहुत कम खोजी गयी है।

तुम्हें वहनके रूपमें पाकर ही मेरा अधिक लाभ हुआ है, और तुम्हारा

भी इसीमे अधिक लाभ है। 'भाई' और 'वहन' हमारे लिए शब्द ही नही रहेंगे, वे शक्ति वनेंगे। खूनका नाता ही ससारमे एकमात्र नाता नही है, उससे भी गहरा नाता हृदय और उद्देश्यका है। तुम शायद जानती हो कि अपने विवाहका साथी चुननेके लिए मै तुम्हारी तरह परतन्त्र नही हूँ। अपनी वरावरीके परिवारकी जिस लडकीको भी मै पसन्द करूँ, उसके माँ-वाप अधिकतया इस प्रकारके प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर सकते हैं। हमारी जातिमें लडकियोका विवाह वैसे भी एक कठिन समस्या है। हमारी विरादरीमें कुछ विशेष पढे-लिखे और समृद्ध परिवारोको छोडकर यह रिवाज नही है कि कोई लडका या लडकी अपनी पसन्दकी किसी लडकी या लडकेके प्रति वैवाहिक रुचि प्रकट करे। यह पूर्णतया माता-पिताओका ही काम समझा जाता है। विवाह समधी-समधी और समधिन-समधिनका होता है, लडके-लडकीका नही। यह वात हमारे वर्गके कमसे-कम अस्सी प्रतिशत परिवारोपर अभीतक लागू है। हमारी ही नही, ब्राह्मण, वैश्य, ठाकुर आदिकी विरादरियोका भी यही हाल है। अपने विवाहके लिए मैंने अव जिस लडकीको पसन्द किया है, उसके भाईसे वता दिया है। लडकीकी स्पष्ट स्वीकृतिके वाद, उसके भाईके सुझावपर, उसके पिताकी ओरसे ही इस विवाहका प्रस्ताव आयेगा और यह विवाह यथासम्भव तय हो जायगा। यह लडकी तुम्हीमे से एक है। इस सम्वन्धमें आगेकी वात फिर कभी लिखूँगा। विवाहके लिए दूसरे चुनावकी लडकीको निश्चित करके मैं तुम्हारा कही अधिक व्यापक सम्पर्क और सहयोग पा सकूँगा। समाजके युवक-युवतियोको केवल अपने जीनेकी ही नही, समाजके कुछ काम आनेकी भी चिन्ता करनी चाहिए। यह उत्तरदायित्व प्रत्येक व्यक्तिका है।

तुम्हारे ही कुछ व्यक्तिगत प्रश्नोको, व्यक्तिगतके नही, समाजगतके रूपमें लेकर मै समाजके सामने कुछ वाते रखना चाहता हूँ। तुम और तुम्हारा छोटा-सा परिवार जिन परिस्थितियोमें है, ठीक उन्ही परि-

स्थितियोमें हमारे समाजकी अधिकाश लडकियाँ और उनके परिवार है । मेरा विश्वास है कि तुम मेरे प्रश्नोका पूरे उत्साह और स्पष्टताके साथ उत्तर दोगी । तुम्हारे उत्तरोकी रोशनीमें—निस्सन्देह वे उत्तर तुम्हारी-जैसी प्राय सभी लडकियोंके उत्तर हो सकेंगे—हम कुछ करनेका मार्ग खोजेंगे । तुम्हारी आयु इस समय सत्रह और इक्कीसके बीच कही होगी । तुम्हारे पिताका वेतन इस समय डेढ-सौ या अधिकसे-अधिक दो-सौ—लिखना कितना—होगा, सब मिलाकर उन्हे शायद ढाई-सौ तक पड जाते हो । ढाई-सौके लिए तुम्हारा छोटा-सा परिवार भी बहुत बडा है । तुम्हारी तीन या चार छोटी बहनें है, एक भाई है, माँ है और एक विधवा बुआ है । घरका खर्च कठिनाईसे चलता है । पिताजीने लडकियोके विवाहके लिए कुछ रुपया डाकखानेमे जमा कर लिया है, वह भी चार-पाँच हज़ारसे अधिक नही हो सकता । चार सालसे वे तुम्हारे विवाहके लिए चिन्तित हैं । वरकी खोजमें, शकुन कहती थी, वे सात-सौ रुपये खर्च कर चुके है । तुम सुन्दर हो—विशेष सुन्दर, सुशील, सुशिक्षित और समझदार । अपने गर्ल्स कॉलेजमें तुम अब भी पढ रही हो, बी० ए० तो करोगी ही । लेकिन इस पढाईका कारण, मैं समझता हूँ, यही है कि तुम्हारे योग्य कोई वर अभीतक तुम्हारे पिताजीको नही मिला । पढ-लिखकर तुम कोई नौकरी नही करोगी, कमसे-कम तुम्हारे पिताजी इसके विरुद्ध ही है । वे तुम्हें इसलिए पढा रहे है कि इससे कोई बी० ए० या एम० ए० लडका तुम्हारे लिए आसानीसे मिल जायेगा । जिस घरमे तुम विवाह करके जाओगी, वहाँ भी तुम्हारा पारिवारिक परदा चलेगा । नयी रोशनीके बे-परदा घरमें तुम्हें भेजना तुम्हारे पिताजी पसन्द नही करेंगे । अब मै तुमसे कुछ प्रश्नोंके उत्तर चाहता हूँ

(१) क्या तुम्हें इस बातका अनुभव नही है कि तुम अपने माता-पिताके सिरपर कितनी चिन्ता और सकीर्णताका बोझ बनी हुई हो ?

(२) अगर यह अनुभव है, तो क्या तुम उनका बोझ बँटाना या घटाना नही चाहती हो या ऐसा करनेका कोई मार्ग तुम्हारे सामने नही है ?

(३) तुम्हारा विवाह तुम्हारी रुचि और स्वीकृतिकी भी कोई वस्तु है या केवल तुम्हारे माता-पिताकी एक गले-पडी आवश्यकता-मात्र ? (विवाहके सम्बन्धमे तुम्हारी अपनी कोई कल्पनाएँ और कामनाएँ है या नही, यह पूछनेकी तो मुझे आवश्यकता नही है ।)

(४) तुम्हारी दृष्टिमें क्या कोई भी नवयुवक ऐसा नही है—मैं अबकी बात पूछता हूँ—जिसे अपना जीवन-सगी बनानेकी कामना तुम्हारे मनमें उठती हो और जो तुम्हें पसन्द कर सकता हो और जिससे विवाह कर देना तुम्हारे माता-पिताको भी स्वीकार हो सकता हो ?

(५) अपने विवाहके सिलसिलेमें तुम अपने पिताजीकी इच्छाके सामने अपने व्यक्तित्वकी भी कुछ हैसियत समझती हो या नही ?

(६) यदि अपने और अपने परिवारके सुखके लिए तुम्हारे सामने कोई मार्ग खुले, तो तुम उसपर बढनेका कुछ साहस कर सकती हो या नही ? अभी ये छह प्रश्न ही। उत्तर देनेमें तुम्हारी स्पष्टता लोक-हितकी वस्तु होगी ।

२९-९-१९५२]

सस्नेह तुम्हारा भाई
शरत्

●

भाई,

पत्र मिला। उससे मुझे कितना नया प्रकाश और नयी शक्ति मिली है, मैं कह नही सकती। मैं अपने जीवनको निरर्थक और भार-स्वरूप समझने लगी थी, लेकिन अब तो मेरा दृष्टिकोण ही बदलता जा रहा है। सम्भव है, ईश्वर मुझसे समाजके लिए कोई काम लेना ही चाहता हो।

वार कामना कर चुकी हूँ कि मै मर जाऊँ। पर वैसी कामना मेरी अनुचित भावुकता थी, मै अब मान सकती हूँ। आपके प्रश्नोका उत्तर लिखती हूँ—

(१) मुझे पिताजीकी चिन्ताओकी वहुत वडी चिन्ता है।

(२) मार्गकी वात मैने कभी नही सोची, पर अब अनुमान होता है है कि मेरे लिए कोई मार्ग हो सकता है। उचित मार्ग मिले तो मैं पिताजीका वोझ एकदम उतार देना चाहूँगी।

(३) मेरी रुचि और स्वीकृतिके लिए भी स्थान होना चाहिए। मुझे लगता है, ऐसी इच्छा हर एक लडकीके लिए स्वाभाविक है।

(४) ऐसे अनेक नवयुवक मेरे देखे हुए है, जिन्हें मै विवाहके लिए पसन्द कर सकती हूँ, जो सम्भवत मुझे भी पसन्द कर सकते है और मेरे माता-पिताको भी उस विवाहका औचित्य स्वीकार हो सकता है। लेकिन कठिनाई उनके माता-पिताकी स्वीकृति और दहेज आदिके प्रश्नकी तव भी रह जाती है।

(५) मेरी हैसियतका ज्ञान आपने मुझे कराया है, अव मै उसे मानती हूँ।

(६) मै अव तो साहससे ही काम लेना चाहती हूँ।

आपके पत्रोको मेरी अनेक सहेलियोने देखा है और मेरे इस पत्रको भी। मेरे उत्तर मेरे ही नही, मेरी अनेक सहेलियोके भी उत्तर है। उन सवकी इस पत्र-व्यवहारमे वहुत दिलचस्पी हो गयी है। आशा है, आप सभी पत्र उन्हें दिखाते रहनेकी मुझे अनुमति दे देंगे।

२-१०-१९५२] आपकी वहन—प्रियवदा

पुनश्च

मुझे पत्रोमे भरपूर स्पष्ट होना चाहिए। ऊपर जो 'एक वातको छोडकर' मैने लिखा है, वह यही वात है कि मैं सुन्दर या विशेष सुन्दर अपने-आपको नही देखती।

—प्रि०

प्रियवदा,

तुम्हारा नाम सार्थक रूपमें ही 'प्रिय'से प्रारम्भ होता है, इसलिए उस शब्दको दोहरानेकी आवश्यकता नही है। पिछले पत्रमें तुमने जो उत्तर दिये, उनकी ही कल्पना मैं भी कर सकता था, पर उनकी सचाईपर विश्वास तुम्हारा पत्र पाकर ही कर पाया हूँ। अपने महिला-समाजके सम्बन्धमे उनके तीन पहलुओपर विचार करके हमें आवश्यक आन्दोलन उठाना है। वे तीन पहलू ये हैं—शिक्षा, विवाह और पारिवारिक जीवन।

पिछले पत्रमें मैंने विवाहके सम्बन्धमे कुछ प्रश्न तुमसे पूछे थे, क्योकि हमारे परिवारोमें लडकियोंके सम्बन्धमें यही समस्या सबसे आगे रहती है, यद्यपि दूसरे दो पहलू कम महत्त्वके नहीं हैं। लडकियोकी शिक्षा-सम्बन्धी परिस्थितिको छुए विना उनके माँ-बापकी विवाह-सम्बन्धी कठिनाइयाँ कभी हल नही होगी। शिक्षाको मैं पढाई-लिखाईके अर्थमें उतना नही, व्यवहार-शैली और दृष्टिकोणके अर्थोमें अधिक ले रहा हूँ। हमारे परिवाराकी लडकियाँ अब भी अधिकाशत परदेमें रखी जाती है। वे यद्यपि पुरुषोको देखकर घूँघट नही खीचती और मुँह भी नही फेरती, फिर भी किसी बाहरी पुरुषपर आँख उठाकर दृष्टि डालना या उससे कोई बात कह सकना उनके लिए गुनाह समझा जाता है। आजकलकी बडी-बूढियाँ, जो अपनी पढ़ी-लिखी लडकियोकी नयी रोशनीकी कुछ हिमायत कर पाती हैं, कहती हैं "औरतको आँखका परदा करना चाहिए, सामनेसे निकलनेमें क्या हर्ज है।" इसका मतलब यही है कि औरतको किसी पुरुपपर दृष्टि नही डालनी चाहिए। लेकिन यह आँखका परदा क्यो होना चाहिए, मैं किसी समझदार लडकीसे सुनना चाहता हूँ। क्या इस 'आँखके परदे'का यह अर्थ नही है कि जिस पुरुपपर स्त्रीकी दृष्टि पडेगी उसपर वह मोहित हो जायेगी या वह पुरुप उसपर मोहित हो

जायेगा ? एक या दोनोंके हृदयोमे एकदम बुरे-ही-बुरे विचार उठ खडे होंगे ? आदमी औरतको बांध ले जायेगा या औरत आदमीपर टोना कर देगी ? उनमें-से एक या वे दोनो काबूसे बाहर हो जायेंगे ? स्त्रीपर कुदृष्टि पड जायेगी और उसका सतीत्व या कौमार्य भ्रष्ट हो जायेगा ? क्या इस प्रतिबन्धका यह अर्थ नही है कि ये स्त्रियां और लडकियां ज़रा भी विश्वासके योग्य नही हैं, उनमें केवल यौन-कामुकता ही है और वे इस मामलेमें बिलकुल कमज़ोर है और हमारा पुरुष-वर्ग भी ऐसा ही है ?

हमारे समाजकी स्त्रियो और पुरुषोंके सम्बन्धमें ऐसी शकाएँ एक हद तक ठीक भी हैं, मैं मानता हूं। लेकिन परदा अब इनका इलाज हरगिज़ नही है। परदेकी सबसे बडी शिक्षा है 'स्त्री स्त्री है, वह स्त्री-शरीर है जिसपर पुरुष ललचाई हुई दृष्टि डालता रहता है। उसे अपने आपको उस दृष्टिसे बचाकर रखना चाहिए।' लेकिन इससे अधिक घातक शिक्षा समाजके लिए अब कोई नही हो सकती। यह शिक्षा मानवताके आधे ससारको—स्त्री-मानवको—उसके वास्तविक रूप—मनुष्य-रूप—की ओरसे अन्धा कर देती है। उसे केवल स्त्री बताकर तो वह कामुकताके गढेमे उसे और भी गिराये रखती है। पुरुष मनुष्य है, स्त्री भी मनुष्य है। वह देख सके, तो पुरुषसे कम नही है। स्त्री अपने सबल स्त्रीत्वको कदर और रक्षा परदेके भीतर रहकर नही, परदेके बाहर आकर ही कर सकेगी। परदेके भीतर न उसका आत्म-विश्वास जगेगा, न अनैतिक दृष्टिका मुकाबला करनेका बल उसमें जगेगा और न आत्म-सयमकी भावना ही उनमें पुष्ट हो पायेगी। उसकी पवित्रता केवल पालनेकी—बाल-खटोलेकी—पवित्रता ही रहेगी।

प्रियवदा-जैसी लडकियां परदोंके पीछे पडी सडती हुई मां-बापोंके सिरका भार बनें, यह अब अक्षम्य है। मै उस आंखके परदेको परदेका और भी घातक रूप मानता हूं। तुम्हें चाहिए कि परदेके बाहर आओ, जो भी पुरुष तुम्हारे सामने पडें, सीधे उनकी आंखोमे अपनी सतेज,

पर सहृदय आँखोसे देखो, जिनके सहयोगसे तुम्हारा, उनका और समाजका हित हो सकता हो, उन्हे अपना मित्र बनाओ, जो सुन्दर और सुसस्कृत दीख पडे, उनकी यथेष्ट प्रशसा और कद्र करो। उनमें-से किसीको यदि अपने जीवन-सगके लिए वैसा आकर्षक और उपयुक्त समझो, तो सब-कुछ सोच-समझकर उससे साहसपूर्वक प्रेम भी करो और उसे अपना जीवन-सगी बनानेका मार्ग निकालो। तुम प्रियवदा, सुशिक्षित हो, भावनाशील और विचारशील हो, तुममें साहस और अपने-आप सोचनेकी समाई है। तुम सुन्दर भी हो—अति सुन्दर। तुम अपनी हम-उम्र लडकियोको और उनसे भी अधिक नवयुवक लडकोको बहुत बडी प्रेरणा दे सकती हो—समाजके नव-निर्माणके लिए। तुम जैसी लडकीसे दर्जनों अच्छे लडके विवाह करनेके लिए उत्सुक होगे। जो लडकियाँ तुम्हारी जितनी सुन्दर और सुयोग्य नही है—साधारण रूप और योग्यतावाली हैं—उन्हें भी अपने उपयुक्त वर चुनने और चुने जानेमे कठिनाई न होगी, यदि वे परदेसे बाहर मुँह निकालेंगी, क्योकि पुरुष-समाज के सभी क्वाँरे नवयुवक सुन्दर नही होते और सुन्दरियोकी ही आशा नहीं रखते। हृदयका आकर्षण बिना ऊपरी शारीरिक सौन्दर्यके भी काम करता है। जो लडकियाँ बिलकुल कुरूप होनेके साथ-साथ निकम्मी भी हो, वे अलबत्ता परदेमें रहकर अपने माँ-बापके धनसे अपने लिए पति खरीद सकती हैं, यद्यपि उनके लिए यही अधिक अच्छा है कि यदि वे किसी युवककी दृष्टिमें अपनेको विवाहके उपयुक्त न दिखा -सकें तो अविवाहित ही रह जायें। विवाह ही स्त्री-जीवनका सब-कुछ नही है।

मैं लडकियोंके माँ-बापसे बगावत करनेकी बात नही कह रहा हूँ और न स्त्री-जीवनकी मर्यादाओको अस्वीकार कर रहा हूँ। इस सबका स्थान समाजमे रहना चाहिए, लेकिन उसकी सीमाएँ समयानुसार बदलती रहेंगी। लडकियाँ केवल प्रेम करने और पति चुननेके लिए ही परदेसे बाहर आये तो वह गलत होगा। उन्हें सहज भावसे, समाजमें अपने हिस्सेका काम

करनेके लिए परदेसे बाहर आना चाहिए। सयम, पर-विश्वास और आत्म-विश्वास उन्हें अपने भीतर परखना चाहिए। अपने समवयस्क युवक-वर्गमें उन्हे अपनी समाई-भर अधिकसे-अधिक मित्र, कुछ चुने-परखे भाई, और प्राय उससे भी कम, कुछ विशेष आकर्षक ऐसे युवकोंको, जिनमें-से किसीको भी वे अपना जीवन-साथी बना सकती हो, अपना प्रेमी-प्रशसक भी बनाना चाहिए, और तीसरे प्रकारके युवकोंके साथ वे सूक्ष्म रूपसे लाज-परदेकी भावुकताओंका व्यवहार भी कर सकती है। हर एकको भाईकी दृष्टिसे देखनेकी शिक्षा अस्वाभाविक, ढोंग और अहितकर है।

स्त्री-समाजकी परिस्थितियोंको सम्हालनेके लिए तुम क्या कर सकती हो, यह तो एकदम इस पत्रमें ही मैं नही लिख सकता, वह धीरे-धीरे ही सामने आनेकी चीज है। लेकिन मै तुम्हें याद दिलाता हूँ कि उसके लिए कुछ करना तुम्हारा अनिवार्य कर्त्तव्य है। समाजके युवक और युवतियाँ क्या-क्या कर सकते हैं, यह भी हम धीरे-धीरे ही देखेंगे। लेकिन समय खोनेका भी अवकाश नही है। इस कामके लिए, तुम्हें स्वतन्त्र करनेके लिए आवश्यक है कि तुम अपने माता-पिताको उनकी चिन्ताके भारसे शीघ्र ही मुक्त कर दो और तुम्हारे लिए उपयुक्त जीवन-सहचर तुम्हारे साथ हो जाये। तुम स्वीकार करो तो मैं अगले पत्रके साथ अपने पाँच-छह मित्रोंके चित्र और परिचय तथा स्वभावके विवरण तुम्हारे पास भेजना चाहता हूँ। ये सभी लड़के हमारे सजातीय होगे और इनमें-से दो या तीन हमारी उप-जातिके ही होंगे। तुम इनमें-से जिसे भी पसन्द करोगी, वही तुमसे विवाह करनेके लिए सहर्ष प्रस्तुत होगा। तुम्हारे पिताजीको इस नये-से मार्गके लिए राजी करनेमें यदि कुछ कठिनाई होगी तो वह भी उठा ली जायेगी। मेरा ऐसा प्रस्ताव स्वीकार करके तुम न केवल अपने पिताजीका बहुत-सा बोझ बंटा लोगी, बल्कि यह काम अपने-आपमे भी तुम्हारे द्वारा समाजके सामने प्रस्तुत किया हुआ एक क्रान्तिपूर्ण आदर्श होगा और इसका प्रभाव

बहुत व्यापक होगा। तुम्हारे सहृदय साहसके लिए अग्रिम बधाई देता हूँ।

५-१०-१९५२　　　　　　　　　　　　　　　　　तुम्हारा भाई–शरत्

●

भाई,

पत्र मिला। आपके आदेशोंमें नये प्राण मुझे मिलते हैं। मैं उनसे बाहर नही हूँ। भेजिए, मैं प्रतीक्षा करूँगी।

८-१०-१९५२]　　　　　　　　　　　　　　　आपकी बहन–प्रियवदा

●

प्रिय बहन,

अलग बन्द रजिस्टर्ड लिफाफेमें सात चित्र और उनमें-से हर एकके साथ उनका विस्तृत परिचय भेज रहा हूँ। निर्णय शीघ्र भेजोगी।

१४-१०-१९५२]　　　　　　　　　　　　　　तुम्हारा भाई–शरत्

●

भाई,

इसी लिफाफेमे सातो चित्र लौटा रही हूँ। मै उनमें-से किसीको भी पसन्द कर सकती हूँ, फिर भी अपनी पहली और दूसरी पसन्दके चित्रोंके परिचय-पत्रोपर निशान लगा रही हूँ। दो चुनाव इसलिए कि यदि पहलेको स्वीकार करनेमें जाति-भेदके कारण पिताजीको दु ख हो, तो दूसरेको तो वे पसन्द कर ही सकते है। आपके प्रति जो-कुछ कहना चाहती हूँ उसके लिए मेरे पास शब्द नही है।

१७-१०-१९५२　　　　　　　　　　　　　　आपकी बहन–प्रियवदा

वर्षगाँठकी बधाई

उत्तरी भारतके एक प्रमुख राजनैतिक नेताको उनकी पचपनवी वर्ष-गाँठपर जो बधाईके पत्र प्राप्त हुए, उनमे एक यह भी था

प्रिय

पचपनवें जन्मदिनपर आये हुए बधाईके पत्रो और तारोके साथ यह पत्र भी तुम्हें मिल रहा है। मेरी ओरसे भी बधाई स्वीकार करो। इस वर्ष आयी हुई बधाइयोकी सख्या सबसे अधिक है। तुम्हारा सबसे बडा विपक्षी···जो पिछले वर्ष तक तुम्हें किसी गिनतीमें ही नही लेता था और जिसे इस वर्ष तुमने अपने अपूर्व कौशलसे करारी हार दी है, उसका भी बधाईका तार तुम्हारी मेजके ढेरमें है। यह निश्चित है कि वह अब तुम्हारे हाथकी कठपुतली बने रहनेमें ही अपना गौरव और अपनी रक्षा समझता है।···की उन राजकुमारीका भी पत्र इसमें है। वह अब युवा और अवि-वाहिता नही है, फिर भी अठारह वर्ष पहले, तुम्हारे दोष या निर्दोषिता-पर, उसने तुम्हारा जो अपमान किया था, उसका पूरा प्रतिकार इस पत्र-द्वारा हो ही जाता है। बीचके इन इतने वर्षोमे उसका-तुम्हारा किसी प्रकारका भी वास्ता नही रहा है, इसलिए इस पत्रके भेजनेमे यदि उसका कोई छिपा हुआ स्वार्थ भी है तो भी इसे तुम अपनी एक बडी जीत समझ सकते हो। तुम्हारा यह अनुमान ठीक है कि वह युवा न होते हुए भी स्वस्थ और सुन्दर अब भी है और बराबरीकी भावनाके साथ तुमसे हाथ ही नही, मुसकराती हुई आँखें भी मिलानेमे अब उसे कोई आपत्ति नही हो सकती। मिल ओनर्स ऐसोसिएशनके खजाची सेठ का बधाई-पत्र इस बातका सूचक है कि वह व्यक्तिगत रूपमें ही नही, ऐसोसिएशनकी ओरसे भी अब तुम्हारी 'लोकोपयोगी' योजनाओको आर्थिक सहयोग देनेके लिए

उत्सुक है। इसमे कोई अनहोनी वात नही है, इन सबका कितना वडा स्वार्थ अव तुममे सघ सकता है, ये जानते है। ''का आशीर्वाद कितने नेताओको जन्म-दिनपर प्राप्त होता है ? तुम्हारी आजकी डाकमें वह भी मौजूद है और उसका उपयोग अपनी 'नि स्वार्थ सेवा-शीलता'के एक प्रमाणपत्रके रूपमें तुम किसी हदतक कर सकते हो।

अपनी मेजके सम्बन्धमें मेरी इस जानकारीका मानव-सुलभ हल तुम आसानीसे निकाल लोगे। तुम समझ लोगे कि इस पत्रको लिखनेसे पहले मैं और' 'के सम्पर्कमें रहा हूँगा और मैंने पता लगा लिया होगा कि ये लोग भी तुम्हें वधाईके पत्र या तार भेजेंगे, या मैंने ही इन्हें तुम्हारे पास वधाई भेजनेके लिए प्रेरित किया होगा। फिर भी इस पत्रमें मुझे तुमसे जो कुछ कहना है, उसे पढकर तुम अपने कुतूहलकी कोई कुजी नही ढूँढ पाओगे। लेकिन कुतूहलके नही, कामके लिए मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। कुतूहल इसमें वाधक ही होगा। कुछ देरके लिए, इस पत्रको अपने ही हृदयका, अलवत्ता वागी हुए हृदयका, लिखा पत्र समझकर कुतूहलहीन, सहज सहानुभूतिके साथ इसपर विचार करना।

ससारके विशेष असफल व्यक्तियोमें मै अपने आपको पा रहा हूँ। वहुत विवश होकर, भरे हुए हृदयसे यह पत्र मैं तुम्हें लिख रहा हूँ। तुम कहाँ हो, इसे तुम्हारे साथ, तुम्हारी आँखोंसे मैं अनेक वार देख चुका हूँ, क्या आज तुम मेरे साथ आकर मेरी आँखोंसे इसी वातके निरीक्षणके लिए मेरा निमन्त्रण स्वीकार नही करोगे ?

आज तुम वल और वैभवके एक शिखरपर हो। तुम्हारे जयकारकी गूँज आज एक विस्तृत भू-प्रान्तपर छायी हुई है। जिन लक्ष्मी-पतियोकी ड्योढीपर तुम कभी ललचाई हुई दृष्टि डाला करते थे, वे आज तुम्हारा पानी भरनेको उत्सुक हैं। तुम्हें अव उनकी उतनी परवाह नही है, क्यो कि लक्ष्मीके कोषसे अव तुम्हारा वहुत कुछ सोधा, यद्यपि अनैतिक, नाता है। लेकिन धन-वल-वैभवका सर्वोच्च शिखर ससारके इतिहासमे आज-

तक किसीने नही देखा, और तुम्हारी वर्तमान ऊँचाईपर पहुँचनेवालो की तो सख्या गिनती और लेखेसे भी वाहर है। फिर भी अपनी महत्त्वाकाक्षाओंके अनुसार तुम काफी ऊँचे उठ आये हो। अनुभवो की पकाई वुद्धिमत्ता भी तुमने पायी ही है। पचास लाख रुपया, और उसके वाद राजनैतिक क्षेत्रसे हटकर आजीवन विश्रामकी जो वात तुमने सोची है, उसमें अनुभव-सिद्ध वुद्धिमत्ताका पुट अवश्य है। यथेष्ट धनके सामने जनसमूहो-द्वारा अपने नामकी जयकारकी निस्सारता और राजनैतिक जीवनकी दुर्गम कटकाकीर्णता और जोखिमको तुमने एक तरहसे ठीक ही पहचाना है। लेकिन वह पचास लाख तुम्हें प्राप्त भी होगा या नही, और यदि प्राप्त भी हो गया तो तुम अपने वर्तमान निश्चयपर जमे रहोगे या नही, इस भविष्य-दर्शनमें मेरी अन्तर्यामिता मुझे असहाय छोड जाती है। तुम एक सवल सकल्पवाले व्यक्ति हो, और जिनकी सकल्पशक्ति जितनी जगी हुई होती है, उनके सम्बन्धमें भविष्य-दर्शन उतना ही अधिक अनिश्चित होता है। उनका सकल्प उनके जीवनको परिस्थितियोको उतनी ही सफलताके साथ मोड लेता है।

पचास लाख और 'विश्राम' का जीवन! ऐसा हो जाए तो जिस भयकर कल्पनाका चित्र मेरी आँखोके सामने झूम जाता है, उससे तुम वच जाओगे। लेकिन प्रस्तुत परिस्थितियोके मुक़ावले, मैं देख रहा हूँ, तुम्हारा सकल्प ही तुम्हे इस विराग और विश्रामसे हटा ले जा सकता है। "इतना मेरे लिए काफी नही है, मुझे और भी चाहिए, मुझे और भी मिल सकता है" तुम सम्भवत कहोगे और तुम्हारे विश्रामके दिन अनिश्चित समयके लिए टल जाएँगे। दृढ सकल्पशक्ति मनुष्यका अनिवार्य अग है, उसके विना मनुष्य पूरा मनुष्य नही वनेगा। लेकिन इस अगकी असुविधाएँ भी है। सकल्पकी शक्ति तुममें उचित अनुपातसे कही अधिक जगी हुई है और उसकी भयकर असुविधाओंके सामने तुम खुले हुए हो। जीवनके शेष दिनोमें यदि कोई गहरा मानसिक सताप या शारीरिक पीडा तुम्हारा साथ

दे देती तो तुम्हारा बहुत कुछ कर्म-ऋण उतर जाता। कोढी, क्षयी या किसी मनोवेदनामें घुलनेवाले अपना बहुत-सा बोझ उतार देते हैं। तुम सम्भवत अपने सकल्प-बलका प्रयोग कर वैसी कोई वस्तु अपने पास नहीं फटकने दोगे। लेकिन कर्म-दानवकी कठोर कायासे तुम कबतक टक्कर ले सकोगे? तुम उसे केवल कठोरतर प्रहारके लिए ही निमन्त्रित करोगे।

मैं यह नही कहता कि तुमने कोई ऐसे भयकर पाप किये हैं, जो साधारणतया मनुष्य नही करते। साधारणतया अपने जिन पिछले कर्मोंको तुम पापके रूपमें याद कर सकते हो, उन सबोकी ओर मैं उँगली नही उठा रहा हूँ। उनमें-से अधिकाश तो अपेक्षाकृत बहुत हलकी बातें हैं, और उनका बोझ तुम अपने सशक्त बाँये हाथसे ही हँसते-हँसते उठा सकते हो। डाके और चोरीका अभियोग मैं तुमपर नही लगा रहा हूँ। जो तुमपर ऐसे आरोप लगाते हैं, वे अपने सिरोमें गधोका मस्तिष्क लिये फिरते हैं। उनमें कितने धन और ऐश्वर्यको सामने पाकर वही सब न करते जो तुमने किया? ऐसे काम साधारण लोग अनजानमें—इनकी गहराइयोको न जानते हुए—करते हैं और इनके कर्म-फल भी अनजानमें ही भोग लेते हैं, वे उनपर कोई समझी-बूझी रोक नही लगा पाते और प्रारम्भिक तकाजोंमें ही, सहते-सहते वे अपना ऋण चुका देते है। लेकिन तुम साधारण लोगोमें नही हो। तुम अनजान होनेका दावा, बहाना, प्रयत्न या सन्तोष, कुछ भी नही कर सकते। अपनी अन्तरात्माके सामने उदासीन, विमुख—नही, विपरीत—होनेके लिए तुमने जिस दिन पहला कदम उठाया था, उस दिन तुम्हारी आँखें खुली हुई थी। अनजानमे नही, असावधानीमे नही, पूरी जानकारी और कौशलके साथ तुमने उस दिन वह पहला कदम उठाया था। अपनी डायरीमें बडे-बडे लाल अक्षरोमे तुमने उस दिनकी तारीख डालकर अपना वह निर्णय लिखा था। लेकिन जाओ, ससारकी सबसे गहरी काली स्याही ढूँढकर उसीको उन अक्षरोंके ऊपर चढा दो!

उस भयकर प्रभातको मैं भूल नही सकता। तुम्हारे—और तुम इसे

स्वीकार न करोगे तो मेरे—इस दु खान्तकी ओर जाते हुए जीवन-नाटकका वह पहला दृश्य था। उस घृणा और प्रतिहिंसाकी भावनासे भरे हुए अपार जन-समूहकी पिछली पक्तिमें खडे हुए, उस महाप्रभावशाली वक्ताके भाषण-के पश्चात् तुमने अपने मनमें कहा था

"ऐसा ही प्रभावशाली, इतनी और इससे भी बडी-बडी भीडोको अपने वचन-प्रवाहमें बहा ले जानेको समाईवाला एक महान् वक्ता मै भी बनना चाहता हूँ—मै बन सकता हूँ, मै बनूँगा। मै मनुष्योका नेता बनूँगा, मै जिधर चाहूँगा, उन्हे ले जाऊँगा।"

यह तुम्हारा पहला मूलभूत 'काला मन्त्र' था जिसका तुमने उस दिन जप किया था।

"मै क्यो इतना प्रभावशाली वक्ता, मनुष्योका एक बडा नेता बनूँ? क्या यही सबसे बडी महत्त्वाकाक्षा है? मेरे और दूसरोके लिए इसका अन्तिम उपयोग क्या होगा? मैं मनुष्योका नेता बनकर उन्हें किधर ले जाऊँगा? उनके पहुँचने योग्य स्थलोकी मुझे कितनी जानकारी है? ऐसे उत्तरदायित्वको क्या मै उठा सकता हूँ? कला और साहित्य-सम्बन्धी मेरी प्रवृत्तियाँ क्या इस महत्त्वाकाक्षाके आगे कोई वजन नही रखती?"—ये और इन्ही-जैसे सैकडो प्रश्न उस रात तुमने—तुम्हारी अन्तरात्माने—अपने सामने रखे थे और अन्तमें, उस रातके अन्तमें, अपने मनके भीतर जीते हुए पक्षके विपरीत तुमने अपनी डायरीमें लाल अक्षरोमें लिखा था

"मै एक असाधारण वक्ता और जन-नायक बनूँगा। इसके लिए मैं कुछ भी—सभी कुछ—मूल्य देनेके लिए तैयार रहूँगा। असाधारण वक्ता, सफल जन-नायक मै बनूँगा—बनूँगा—बनूँगा।"

और इस तान्त्रिक सकल्पके बाद तुमने अपने मनमें कह लिया था

"शक्तिके साथ मैं पर-सेवाभाव और अच्छाइयोको भी अपने भीतर जगाऊँगा। उपयोगके नही, सदुपयोगके लिए मैं इस शक्तिको प्राप्त करूँगा।"

यह एक भयानक षड्यन्त्रमें तुम्हारे हृदय और मस्तिष्कका गठ-बन्धन था !

उस रक्त-प्रतिज्ञाके वाद भी तुम्हारी अन्तरात्मा पुकारती रही और उसकी आवाज़ तुम्हारे कानो तक पहुँचती रही। यह महत्त्वाकाक्षा क्यो ? यही महत्त्वाकाक्षा क्यो ? तुम्हारे पास इसका कोई सुलझा हुआ उत्तर नही था। अन्तमें तुमने अपने कान वन्द कर लिये। तुम्हारे भीतरका मानव फिर भी लडता रहा। छोटे आकारकी वह पतली-सी पुस्तक तुम्हारे हाथ लगी। वह कोई अकारण, साधारण सयोगकी वात न थी। पुस्तकका पहला ही वाक्य था Kill Out Ambition—महत्त्वाकाक्षाको समाप्त कर दो। तुमने जलते अङ्गारेकी तरह उस पुस्तकको हाथसे गिरा दिया। तुमने अपनी आँखें भी वन्द कर ली। तुममें उसे उठाये रखनेका वल नही रह गया था। निर्वलताका प्रवेश तुम्हारे भीतर हो चुका था। तुमने अन्तिम सकेतसे भी पीछा छुडाया।

महत्त्वाकाक्षा वुरी चीज़ नही है। जीवनमें वह वहुत उपयोगी है, लेकिन एक मज़िल-विशेष तक ! उसके आगे उसका कोई उपयोग नही, उलटे वह हानिकर है। तुम मानव-पथकी उस मज़िलपर थे जहाँसे यह चीज़ अनुपयोगी और हानिकर होने लगती है। महत्त्वाकाक्षा—किसी एक महत्त्वकी आकाक्षा, इसीको लोग महत्त्वाकाक्षा कहते है न ? लेकिन शेष दूसरे अगणित महत्त्व ? वे सव तो उस एक महत्त्वके वाहर ही रह जाते हैं। तव क्या यह अतोल घाटेका सौदा नही है ? वह कोई ऐसी महत्त्वा-काक्षा क्यो नही पकडता, जिससे कोई महत्त्व वाहर न रह जाये ? वैसी महत्त्वाकाक्षाको महत्त्वाकाक्षा नही कहते, वह जाग्रत् जीवनकी सहज स्वा-भाविक आकाक्षा कहलाती है। जो इसे, जगे जीवनकी आकाक्षाको, अपनाते है वे दूरदर्शी वुद्धिमान् हैं। महत्त्वाकाक्षा पर्वतकी वीच ऊँचाईपर उगे हुए एक ऊँचे वृक्षपर वँधी हुई रस्सी है। उस रस्सीके एक सिरेसे अपने शरीर को वाँधकर उसके सहारे मनुष्य सुगमता-पूर्वक ऊपर चढता है—यह

उसका उपयोग है। लेकिन वही बँधी हुई रस्सी उसे आगे ऊपर चढनेसे रोकती भी है। उसे कमरसे खोल-निकालना प्राय असम्भव ही होता है। यात्रीकी बुद्धिमत्ता बिना ऐसी रस्सीके ही आगे बढनेमें है। जीवनकी सभी ऊँचाइयाँ, पूरी सम्भावनाएँ, देखे बिना किसी एक ऊँचाई और एक सम्भावनामें अपने आपको बाँध लेना चोटीके यात्रीके लिए कितना ओछा लडकपन है।

तुम वही थे जहाँसे यह बात तुम्हारे लिए सुगम और सुबोध थी, लेकिन तुम हठपूर्वक अपने नये अनदेखे मार्गपर बढ चले। शक्तिके साथ, उचित अनुपातमें बुद्धिमत्ताको भी साथ लेते चलना चाहिए, इसे तुम भूल गये। अपने स्वाध्यायकी पुस्तकें, अपना मनन-चिन्तन तुमने बन्द कर दिया। अपने बलिष्ठ हाथोंसे अपने अभीष्टको तुमने असाधारण झटके दिये। फल टूटकर तुम्हारे हाथोंमें आ गया। वह कच्चा, खट्टा, कुछ विरस था, फिर भी वह तुम्हारा अभीष्ट फल ही था।

तुम्हारी उग्र साधना फलवती हुई। तुम्हारी वाणीने उमडते जन-समूहोंको अपनी लहरोंमें इच्छानुसार डुबाना—उछालना प्रारम्भ कर दिया। तुम जन-नायक बन निकले। भरी सभाओंके बीच फूलों और जयकारोंमें तुम डूब उठे। तुम्हें अपना अग्रणी बनानेके लिए अगणित सभाएँ-संस्थाएँ उमड पडीं। तुम्हारे आन्दोलनोंके लिए लोगोंने तुम्हारे पैरोंके नीचे थैलियाँ रखनी प्रारम्भ की। आगे चलकर लोगोंने तुम्हें थैलियोंसे खरीदना भी चाहा। तुमने पैरोंकी ठोकरसे उन्हें दूर कर दिया। कुछ अर्थोंमें तब भी तुम मनुष्य थे, पौरुष रखते थे। तुम्हारी वाणीकी पूजा बढी और उस दिन—उस दिनको तुम भूल भी कैसे सकते हो?—सभामंचमें सभाकी कार्यकर्त्री एक सुन्दरी तरुणीने मुग्धता-भरी मुसकानके साथ तुम्हारे गलेमें फूलोंकी माला डाल दी। तुम्हारी गर्दन फँस गयी।

तुमने उस तरुणीको अपने हृदयका सारा प्यार, अपने भीतरकी सच्ची आत्मीयता सौंपनेका विचार किया। प्यार—हृदय—आत्मीयता, ये चीजें

उस समय तक सचमुच तुम्हारे पास थी और उस अवसरपर अपने निर्मल, निखरे रूपमें चमक उठी थी। तुम अपने उस विचारपर टिक जाते तो अपने खोये हुए मार्गके बहुत समीप पहुँच जाते। वह तरुणी महत्ताकी ओर बढनेकी कुछ विशेष सम्भावनाएँ लेकर जन्मी थी। उससे अभिन्न होकर तुम फिर अपने आपको खोज लेते। तुमने उसे अपनाया, उसका आत्म-समर्पण स्वीकार किया। तुम्हारी महत्त्वाकाक्षा ग़लत जा सकती थी, तुम्हारा प्रेम नही, इसके साथका तुम्हारा पूर्व युगोका अभ्यास था। उस प्रेममयीके सम्पर्कसे तुम अपनी अन्तरात्माके आकाशमें कुछ ऊपर उठे। लेकिन उस महत्त्वाकाक्षाकी रस्सी तुम्हारी कमरसे मज़बूत बँधी थी, उसने तुम्हें अपनी लम्बाईसे ऊपर नही उठने दिया। तुम्हें पीडा हुई, और तुम नीचे, उसी आकाक्षाके धरातलपर, आ गिरे।

उसके साथ तुमने भयकर विश्वासघात किया। तुम सभा-मचोकी ओर लौटे और अनेक सभा-मचोपर अनेक सुन्दरियाँ तुम्हारे लिए फूल-माला लिये मौजूद थी। उन सबकी तुम्हें आवश्यकता थी। नवीनताओ और विविधताओका तुम अपनेको अधिकारी मान चुके थे। मानवी मास का रक्त तुम्हारे होठोमें लग चुका था। तुम उसीमें डूब गये।

इस नये रासके लिए तुम्हे पैसेकी याद आयी, आवश्यकता पडी। जिन थैलियोको तुमने पहले ठुकरा दिया था, उन्हीके मालिकोके अब तुमने पैर सहलाये। तुम्हारी आवश्यकताएँ बढती गयी और तुमने हज़ार बार उन थैलियोंके लिए अपने आपको कुत्सितसे-कुत्सित हाथो बेचा!

जिन रमणियोंके सुखद शरीरोके साथ तुम खेले हो, उनकी दहकती आत्माओकी लपटोसे क्या तुम बचे रह सकोगे? उनकी ठीक सख्याका भी तुम्हारी गुप्त डायरीमें लेखा नही है। उस डायरीमें यदि तुमने महीनो की खला न डाली होती तो उनकी योगसख्या १८४ न होकर २११ होती। २११ अगारे! इतने तो तुम्हारे शरीरमे जोड भी नही है।

यौन-सम्पर्क कोई अहितकर पाप नही है, यदि वह शरीर तक ही

सीमित रहे। लेकिन मनुष्य विकासकी उस मञ्ज़िलपर है जहां वह ऐसे सम्पर्कको शरीर तक ही सीमित नही रख सकता, केवल पशु ही वैसा रख सकते है। शरीरसे आगे जानेपर भी यौन-सम्पर्क मनुष्यके लिए अहित उत्पन्न करनेवाला कोई पाप नही है, यदि उस सम्पर्कका वह पूरा मूल्य चुका दे। शरीर और आत्मा एक अत्यन्त सवेदनशील सजीव सूत्रसे जुडे हुए है। जब तुम किसी रमणीके शरीरको अपनाते हो और उसकी आत्मा को—उसके आन्तरिक विश्वास, पवित्रता और आनन्दकी सूक्ष्म भावनाओ को—नही छूते, तब तुम उसके शरीरको उसकी आत्मामे मानो काट ले जाते हो। उनकी आत्मा लहू-लुहान हो जाती है। जिस सुन्दरीके मदभरे लोचनो, रसभरे अधरो और यौवन-भरे उरोजोपर तुम मुग्ध हो, क्या उसके इन अगोको तराशकर अपने साथ ले जाना पसन्द करोगे? लेकिन यही तुम करते हो, इससे हज़ारगुने वीभत्स रूपमें।

यौन सम्पर्कका पूरा मूल्य है—पूरा आत्मसमर्पण। जिसका तुम शरीर लेते हो, उसे पूरी सचाईके साथ अपने ऊपर जीवनपर्यन्त विश्वास करने का अवसर दो, उसके आन्तरिक विकास और कल्याणके ज़िम्मेदार बनो, उसके लिए कोई त्याग उठा न रखो। यदि तुम ऐसा नही करते तो उसकी आत्मापर कलक और कालिमाकी परत चढाकर उसके हृदयको वासना या घृणामें लसेढकर पतनकी ओर खीचते हो। इसकी ज़िम्मेदारी और परिणामसे तुम बच नही सकते। स्त्री और पुरुषके बीच शारीरिक सौदेका जो वास्तविक मूल्य है, उसीकी ओर सकेत करनेके लिए समाजमें विवाह नामका सस्कार रखा गया है। विवाह दो व्यक्तियोके बीच आत्म-समर्पणका ही सूचक एक प्रयत्न है और वह उनके शरीर-सम्पर्कको बहुत कुछ औचित्य दे देता है। गहरी आत्मीयताके बिना स्त्री-पुरुषका शारीरिक सम्मिलन उनके आन्तरिक जीवनमें आग और बारूदके सम्मिलन के समान है।

क्या तुम जानते हो, अपने भविष्यके लिए तुमने कितनी ज्वालाएँ

सुलगा रखी है ? तुम्हारी प्रथम प्रेयसीने अपने अबोध लेकिन सच्चे हृदय से तुम्हारे हाथो आत्मसमर्पण किया था। उसे छल-पूर्वक त्यागकर तुमने उसे असह्य मानसिक यातना दी। उसकी स्वाभाविक प्रगतिकी विपरीत दिशामे तुमने उसे बलपूर्वक ढकेल दिया। तुमसे उसे कठोरतम घृणा करनी पडी। उसी घृणा और प्रतिहिंसाने उसके हृदयकी सारी कोमल और मानवोचित भावनाओको जलाकर आज उसे एक भयकर सर्पिणी बना दिया है। सहृदया मानवी-रूपमे उसका जो विकास होना था, उसकी तुमने जड ही काट दी है। उस अभागिनीका सारा शरीर और मन घृणा-प्रतिहिंसाके विपसे भर उठा है। जीवन-भरमें उसका यह जहर नहीं निकल पायेगा। उसे न जाने कितने जन्म इस विपको लिये हुए ही लेने पडेंगे, क्योकि उसके जीवनका सबसे बडा क्षोभ यही हुआ है। और उस विषको उगलनेका स्थान कर्म-देवताओके नियमोंके अनुसार, तुम्हारे व्यक्तित्वसे भिन्न और कही नही है। वह तुम्हें अवश्य डसेगी, इस जन्ममे उसे तुमने दूर डाल रखा है तो अगले जन्मोमे। तभी उसका वह विष निकलेगा। उसकी विषाक्त फुफकारोका प्रभाव दूसरो पर भी पडेगा। जानते हो यह किस तरहका पाप है ? तुमने उसके साथ जो नाता जोडा है, वह अप्रिय हो जानेके कारण टूट नही जायेगा। उसकी जडसे अगणित शाखाएँ फूटकर अपने अनेक बन्धनोसे तुम्हे जकडेंगी। व्याज-सहित तुम्हें उनसे उऋण होना पडेगा।

यह तुम्हारे एक सम्पर्ककी बात है। ऐसे कितने सम्पर्क तुमने एकत्र किये है! कितनी तरुणियोको तुमने अपना पहला सम्पर्क देकर वासनाके गर्तमें ढकेला है! मानव-आत्मा जब नारीका शरीर लेकर ससारमे आती है तब वह प्रेम, त्याग, कोमलता, सौन्दर्य, पवित्रता और माधुर्यकी पूँजी लेकर आती है, इन्हीका व्यवसाय करके इन्ही सम्पत्तियोको बढानेके लिए। ये ही गुण आगे सारभूत होकर ऊँची आध्यात्मिकताका रूप लेते हैं। लज्जा, शील और सयम उसके आभूषण होते है। उसका शरीर इन

पवित्र विभूतियोका पवित्रतम मन्दिर है। भीतर प्रतिष्ठित विभूतियोकी ओर श्रद्धाकी आंख उठाये बिना जो व्यक्ति उस मन्दिरको वासनाके हाथोंसे स्पर्श करता है, वह उसका घोर अपमान करता है। ऐसे अनधिकृत स्पर्शद्वारा वह निःसन्देह उसे, उसके स्वाभाविक गुणोके विपरीत अवगुणोकी ओर खीचकर उसका भयङ्कर अहित करता है।

आज एक वेश्या है। अन्तर इतना है कि उसने पैसेके लिए नही, अपनी भड़की हुई वासनाकी तृप्तिके लिए इस वृत्तिको अपनाया है और उसके प्रेमियोके अतिरिक्त उनके द्वारके सामनेसे निकलनेवालोको इस बातका पता नही है। पैसा उसके पास काफी है। इस खुले प्रेमके मैदानमे उसे तुम लाये हो, उसका 'प्रेम' और 'साहस' तुमने जगाया है। उस मार्गपर वह तेजीमे बढी जा रही है। तुम्हारी तीसरी नायिका ने पैसेके लिए इस मार्गको नियमित रूपसे अपना लिया है। अधिक पैसोंके बिना गुज़र न करना उसे तुमने सिखाया है। को शायद तुमने सबसे बडा नैतिक आघात पहुँचाया है। उस अनाथिनीको बचपनसे ही एक पिताकी आवश्यकता थी और वह उसी रूपमें तुम्हें देखती हुई अपने यौवनकी ओर बढी थी। तुम्हारे स्नेहको उसने पितृ-रूपमें ही लिया था। लेकिन उस पवित्र धारणाको रौंदकर तुम उस दिन उसे विवशता और अविश्वासके जिस गढेमें घसीट लाये थे, उसकी चोटसे वह आजीवन नही उबर सकेगी।

की वर्तमान स्थितिके लिए शायद तुम अपने आपको ज़िम्मेदार न समझते होगे, क्योंकि वह पहलेसे ही इस खेलमें मँजी हुई थी। लेकिन स्त्रीका व्यक्तित्व प्रत्येक पतन-कारी सम्पर्कसे एक हद तक गिरनेके बाद अपने आप ऊपरको उठता है। उसके शरीरमें ही कुछ ऐसी आग होती है, जो उनकी एकत्र मलिनताको जलाकर उसे फिर ऊपर उठनेमे सहारा देती है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुष, जो उसके पतनका साधन बनता है— चाहे वह ऐसा पहला ही हो चाहे सौवाँ—ज़िम्मेदार है। यह भी हो सकता है कि सौवाँ व्यक्ति पहले व्यक्तिसे भी अधिक ज़िम्मेदार हो—यदि सौवें

सम्पर्कके बाद उस स्त्रीकी वह पवित्र अग्नि इतनी क्षीण हो जाये कि आगे यथेष्ट काम न कर सके। इस प्रकार इस स्त्रीके सम्बन्धमे तुम्हारी जिम्मेदारी उसके पहले 'प्रेमी'से विशेष कम नही है। यह ठीक है कि उन बहु-सख्यक अभागिनियोमे, जो तुम्हारे 'प्रेम' का खिलौना बनी है, अधिकाश ऐसी ही है जिनके जीवनमे कोई प्रकट गहरा सन्ताप नही आने पाया है और वे अपने मुखोपर एक काला घूँघट खीचकर जीवनकी बडी सम्भावनाओसे उदासीन होकर चुप बैठ रही है। लेकिन की तरहके उदाहरण भी तो तुमने उत्पन्न किये है, जो पुरुषसे घृणा करने और बदला लेनेके लिए ही 'प्रेम' के आँगनमे उतर आयी है। तुम्हारी शिक्षा-सस्थाकी शरणमें आयी उन बहु-सख्यक अबोध बालाओके बारेमे तुम क्या सोचते हो, जिन्हें अपने हृदयके यौवन-सुलभ प्रेमको देखने-पहचाननेके पहले ही तुम्हारी बाँहोका पाशविक आलिगन सहना पडा था? क्या तुम्हें अनुमान है उनकी किन सम्भावनाओको तुमने निर्मूल कर दिया है?

इन सबका ऋण तुम्हें चुकाना होगा, इनके प्रति भी, और सामूहिक मानवताके प्रति भी। इन ऋणोकी अदायगीका प्रबन्ध कर्म-देवताके कर्मचारी किस प्रकार करेंगे और उसमें तुम्हें कितनी पीडा और तुम्हारी कितनी हानि होगी, इसका तुम अनुमान नही कर सकते। इनसे बचनेके लिए तुम सदैवके लिए सोये या मरे हुए भी नही रह सकते। अब भी एक उपाय है। तुम जाकर इन सभीसे विवाह कर लो, इनकी घृणा, अविश्वास और जनताको पराजित करके अपने तपाये हुए हृदयका सच्चा और सारा प्रेम उनके पैरोपर उँडेल दो। चाहो तो इनके अतिरिक्त दस बीस नयी स्त्रियोसे भी ऐसा ही विवाह कर लो। उसमें कोई हर्ज नही। लेकिन—लेकिन क्या यह तुम्हारे लिए मेरी सलाह है? यह सलाह नही, सलाहका उपहास है। उपाय नही, उपायका उपहास है। तुम्हारे पास इस समय न सच्चा प्रेम ही रह गया है, न तप सकनेवाला हृदय। घृणा और अविश्वास को पराजित करनेके बलका प्रश्न ही कहाँ उठ सकता है।

अदूरदर्शिताको तुम बुरा और हानिकर कहते हो। लेकिन क्या आलस्य और अविवेकके साथ उसीकी सुविधाओंसे स्वयं ही चिपटे हुए नही हो? जो कुछ तुमने बोया है, उसके फलोंकी ओरसे इतना उदासीन रहना तुम कहाँतक बुद्धि-संगत समझते हो? क्या तुम सचमुच उनके सम्बन्धमे अनजान होनेका दावा कर सकते हो? मै जानता हूँ तुम नही कर सकते।

अपनी बात मै क्या कहूँ? मेरी सारी उपलब्ध पूँजी तुमपर लगी हुई है। लाभ तो दूर, पूँजीमें भी एक असाध्य घाटेका लेखा मै जुडा देखता हूँ। इन पंक्तियोंका लेखक मैं कौन हूँ, यह बतानेमें अब मुझे तनिक भी उत्साह नही रह गया है। तुम मुझे अब पहचानोगे भी नही। जिस दिन तुमने उस पहली और एकमात्र महत्त्वाकांक्षाका निश्चित संकल्प किया था, उसी दिनसे तुमने मेरे लिए अपने द्वार बन्द कर दिये थे। उसके पहले मैं-तुम अनेक बार मिल चुके थे। मेरे स्नेह, सम्पर्क और सहयोगकी तुम्हें कदर थी। लेकिन तुम्हारी वह अबोध, एकांगी, एकाभिमुखी महत्त्वाकांक्षा आखिर तुम्हें कहाँ ले गयी। तुम्हे खोनेके बाद कितनी बार मैंने तुम्हारे दरवाजे खटखटाये! मैं कितना विक्षिप्त हुआ! पर तुम न डिगे। निराश हो मैंने अपने दूसरे व्यक्तिगत कामोमें अपना मन लगाया, लेकिन तुम्हारी झीनी याद मेरे मनमे कसकती ही रही! विकसित मानवीय गुणोंकी जो पूँजी मेरे पास उपलब्ध थी, वह सब तुम्हारे जन्मके साथ मैंने तुम्हारे हाथोमे बडी आशाओंके साथ सौंप दी थी। तुम उन्हें आगे बढाकर, एक चरित्रवान् पुरुष बनकर मेरी आशाओंको फली-भूत कर सकते थे। इतनी आशाएँ मैंने अपने किसी बारके भी प्रयानमे नही की थी और इतनी बडी निराशा मुझे किसी बारके भी प्रयानमें नही हुई थी।

गंगा-तटका वह सघन रमणीक वन, जिसे तुमने अपनी उस महत्त्वाकांक्षाके प्रारम्भसे पहले अपनी आत्मसाधना और साहित्याराधनाके लिए चुना था, आज भी तुम्हारी यादमें आँसू बहा रहा है। हमने मैंने और

यहांके तुम्हारे दूसरे परिजनोने तुम्हारे उस पवित्र निर्णयके दिन यहां त्योहार मनाया था। तुम्हारे सम्पर्कसे वह वन आज एक लोक-परिचित तपोवन होता, उसके सहवासमे तुम आज एक उठे हुए साधक होते! तुम्हारा वह निर्णय हमारी आशाओ और अनुमानोके कितना अनुकूल था। तुम्हारे प्रारम्भिक साहित्य-सृजनके प्रयत्नोको हम कितने उत्साह और आशाओके साथ देखने लगे थे! तुम्हारे अध्ययनकी सामग्री जुटानेमे मैंने कितना भाग लिया था—तुम्हें अब बतानेसे क्या होगा! तुम्हारे व्यक्तित्व में मैंने एक महान् साहित्यिक कलाकारको निखरा हुआ देखनेकी कल्पना की थी। अध्यात्म-पथपर आरूढ होनेके लिए सात्त्विक कलासे बढकर दूसरा कोई मार्ग तुम्हारे लिए नही था।

लेकिन अब? अपने पथपर इस जीवनमें लौट आनेके लिए तुम सीमासे बाहर जा चुके हो। आज तुम्हारी पचपनवी वर्षगांठ है। विजय और वैभवका उल्लास तुम्हें चारो ओरसे आज दबाये हुए है। आजकी प्राप्त बधाइयोंके बीच तुम्हें यह पत्र कैसा लगेगा, मैं कुछ समझ सकता हूं। लौकिक बुद्धि तुममें भी है। किसी भी दिन अपने इस वैभवके महलके धराशायी हो सकनेका आभास तुम्हें है। तुम उसके लिए तैयार भी हो। इस लोक-यशके महलके ढह जानेपर दूसरी धरतीके—विश्रामकी हवेलीके सहारेकी जो बात तुम सोच रहे हो यह, मेरी दृष्टिमें, तुम्हारे लिए कुछ आशाजनक है। इस दूसरी सम्भावनाको ही तुम अपनी पहली पसन्द बना सको तो अच्छा है—यही मेरी तुमसे एकमात्र प्रार्थना है। जिन सार्वजनिक कार्योंमे तुमने सरगरमीसे भाग लिया है, उनकी सफलता और विफलतामें लोकहितकी दृष्टिसे, तुम्हारा उतना बन्धन नही है जितना अपने नाम और हितकी दृष्टिसे है। यह साधारणतया जितनी बुरी बात है उससे कहीं अधिक, तुम्हारे और समाजके व्यापक कल्याणकी दृष्टिसे, अच्छी भी है। इसीके सहारे अपनी लोक-सेवाके क्षेत्रसे हट आना तुम्हारे लिए सुगम भी है।

जैसे मुहूर्त और नक्षत्रोंकी छायामें यह पत्र तुम्हारे हाथोंमे पहुँचनेका प्रबन्ध कर रहा हूँ, उससे मुझे यथेष्ट आशा है कि तुम इसपर ध्यान दोगे। मेरे इस अन्तिम प्रयासका आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहे। जीवन-पथपर कमायी हुई भयकरसे-भयकर परिस्थितियोमे भी, देर-अबेर, उबरनेके लिए एक सूत्रके साथ आशाकी एक रेखा रहती है।

तुम्हारा अभिन्न

पुनश्च तुम्हारा विश्रामका जीवन यदि आरम्भ हो सका और अपनी पुरानी पुस्तको और उन्हीके रगके कुछ साथियोके लिए तुम्हारे पास अवकाश हुआ तो शायद मैं फिर भी तुमसे मिल सकूँ।

× × ×

इस पत्रको पढ चुकनेपर उन्होने उसकी लिखावटसे लेखकको पहचाननेका प्रयत्न किया, लेकिन वह उनके किसी भी परिचितकी लिखावट नही जान पडी। पत्रके आदि-अन्तमें तो किसी स्थानका नाम था ही नही, लिफाफ़ेपर भी केवल उन्हींके नगरकी डेलिवरीकी ही मुहर लगी थी। मजबूरन् इस पहेलीको मस्तिष्कसे निकालकर उन्होने वह पत्र अपने बाल-उगी एकमात्र अन्तरग मित्र और सहकारीके हाथमें रखते हुए कहा, "इसे ध्यानसे पढ़ियेगा। जीवनके दर्शनपर इसमे एक नये दृष्टिकोणसे प्रकाश डाला गया है। मैं इसे फुरसतमे फिरसे पढूँगा।"

मैं क्या कहता ?

पिछले दिनों मुझे लगभग दो महीने पटनामें रहनेका अवसर पडा। जहाँ मैं ठहरा था, उसके पडोसमें एक व्यवसायी सज्जन रहते थे। काफ़ी बडा कारबार होते हुए भी वह बहुत मिलनसार और आज़ाद तबीअतके थे। जवानी पार कर आये थे, किन्तु खूब हृष्ट-पुष्ट थे। पडोसके नाते मुझसे भी उनका परिचय हो गया, और उनके स्वभावके कारण वह परिचय शीघ्र ही घनिष्ठतामें बदल गया। एक दिन उन्होंने एक लिफाफा लाकर मेरे हाथमे रखते हुए कहा

"इस पत्रको मेरे पास आये एक महीना हो रहा है। आपका पढने-लिखनेका काम है और आप बहुत विचारवान् हैं। इसे पढकर मुझे सलाह दें कि यह पत्र अपनी पत्नीको देना मेरे लिए ठीक होगा या नही। मैं कुछ तय नही कर पा रहा हूँ।"

मैंने लिफाफा खोला। लिफाफेमें उनकी पत्नीके नाम एक लम्बा पत्र था, और उसके ऊपर स्वय उनके नाम एक छोटा-सा परचा। परचेपर लिखा था

'प्रिय महोदय,

"साथका पत्र आपकी पत्नीके नाम है। इसे कृपया ध्यानपूर्वक पढ लें और अनुचित या हानिकर न समझें, तो अपनी पत्नीको दे दें।"

सायका मुख्य पत्र यो था

प्रिय • ••,

तुम्हें यह पत्र लिखनेके लिए मैं २३ वर्षसे जिस दिनकी प्रतीक्षा कर रहा था, वह कल निकल गया। कल मेरी पचासवी वर्षगांठ थी। मैं अब पचास वर्षका हूँ और जवानीमें उठनेवाले खूनके उफानोसे मुक्त हूँ। किसी

वासना या विचार-हीन भावुकताकी अब मेरे भीतर आशका नही है। अपने आपको और तुम्हे भी, इस तरहकी सुरक्षित भूमिपर समझकर ही आज यह पत्र लिख रहा हूँ।

तुम्हारे विवाहके साल तुम्हारी उम्र सत्रह और मेरी छब्बीस थी। तुम्हारा विवाह हो जानेपर, तुम्हारे आजीवन विछोहकी पहली पीडा कुछ घट जानेपर, अगले ही वर्ष मैंने भी विवाह कर लिया था। लेकिन सुन्दर और सुशील पत्नी पाकर भी मैं तुम्हें भूल न सका। तुम्हारी यादके दौर अगले वर्षोंमे एकसे-एक ऊँचे ज्वार बनकर आते रहे। बीचके कुछ वर्षोंमे उनका वेग बहुत हलका रहा, पर यह निश्चित है कि मैं कभी भी तुम्हें भूल न सका। इधर कुछ वर्षोंमे फिर कुछ स्पष्ट रूपमे मैं तुम्हारी याद करता रहता हूँ, यद्यपि इन यादोका रूप अब बहुत कुछ बदला हुआ है।

पत्नीके प्रथम मिलनके दूसरे ही दिन मैंने तुम्हें एक पत्र लिखा। मैं उस पत्रको किसी गुप्त साधन-द्वारा तुम्हारे हाथो तक पहुँचाना चाहता था। वह पत्र बहुत आवेशपूर्ण था, इतना ही मुझे याद है। दूसरे ही दिन मैंने उसे फाड दिया और निश्चय किया कि जबतक पचास वर्षका न हो जाऊँगा, तुम्हे पत्र न लिखूँगा। उस समय मैं सत्ताईस वर्षका था। प्रेमके निर्मल और स्थायी रूपको मैं पचास वर्षकी अवस्थापर पहुँचकर जैसा कुछ देखूँगा, उसके प्रति मेरा विश्वास तभी जाग उठा था। इतने वर्ष बीतनेपर शायद मुझे तुम्हारे नाम पत्र भेजनेकी आवश्यकता भी नही रह जायेगी, मैंने सन्देह किया था। लेकिन उस आवश्यकताको आज मैं और भी अधिक मजबूत देख रहा हूँ।

इस पत्रको पाकर अगर तुम मुझे उत्तरमे लिखोगी कि तुमने मुझसे कभी वैसा गहरा प्रेम नही किया, या मुझे भूलनेमें तुम्हें कोई कठिनाई नही हुई, तो मैं उस बातपर अविश्वास नही करूँगा। तुम मुझे यहाँतक लिख दोगी कि तुम्हे इस समय ठीक तरह याद भी नही आ रही है कि तुमने मुझे कही देखा है, तो भी मुझे बहुत आश्चर्य नही होगा। तुम्हारा

वैसा लिखना ठीक हो, और मेरा प्रेम या लगन—जो कुछ भी कहूँ—एकतरफा ही हो, तो भी कोई अस्वाभाविक बात नही। आखिर हमने एक-दूसरेको दूरसे ही देखा-सुना है, यद्यपि यह देखना-सुनना पूरे ढाई वर्ष तक चलता रहा है।

तुम्हारे पैतृक मकानसे सटे हुए मकानमे मैं तुम्हारे विवाहके ढाई वर्ष पहले अपने परिवारके साथ आ बसा था। पडोसीके नाते तुम्हारी पन्द्रहवी वर्षगाँठकी मिठाई मेरे घर भी आयी थी। तभीसे तुम्हारी वयका हिसाब मेरे पास है। उस मकानमें पहुँचनेके दूसरे दिनसे ही हमारा आँखो-ही-आँखोमें मिलना प्रारम्भ हो गया था। दूसरी मज़िलपर तुम्हारा कमरा मेरे पढने-लिखनेके कमरेके सामने ही था। एक-दूसरेको मुग्धताभरी आँखोसे देखना ही—वह मुग्धता सम्भव है एकतरफा ही रही हो, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ—हम दोनोका उन कमरोके भीतरका शायद सबसे लम्बा काम था।

आज जैसी नयी सामाजिक रोशनी हम दोनोके परिवारोको प्राप्त नही थी। एक परिवारके मर्दोंका दूसरे परिवारकी औरतोंसे और सयाने लडकों-का सयानी लडकियोसे मिलना अनियमित था। मैं तुमसे, तुम मुझसे बात नही कर सकती थी। लेकिन मेरा अनुमान है, बिना ज़बानकी बातचीतको हम लोगोंने हद तक पहुँचा दिया था। क्या यह सम्भव है कि उन इतनी अधिक मिलनातुर और मिलनेवाली आँखोमे कोई भावपूर्ण सन्देश नही था? अपने घरकी छतपर अपने छोटे भाई और भतीजेसे बात करनेके बहाने तुमने अगणित बार अपने सन्देशे मेरे कानो तक पहुँचाये थे। उनमे मेरे लिए कोई सार्थकता नही थी, यह मैं बिना तुम्हारा प्रतिवाद पाये नही मान सकता। मुझे देखने या दर्शन देनेके लिए तुमने कितनी तपती हुई दोपहरी-की घडियाँ अपनी खुली छतपर बैठकर और टहलकर बितायी थी, मुझे याद है। जब कभी महीने-दो-महीनेके लिए तुम्हें या मुझे कही बाहर जाना होता था, तब अपनी आँखोके छलछलाये आँसू मुझे सौंपनेके लिए तुम

जितनी उत्सुक होती थी, उससे अधिक मैं उन्हें लेनेके लिए आतुर हो उठता था। ऐसे ही अवसरोपर दो-तीन बार तो तुम्हारे टप-टप टपकते आँसुओंकी, और एक बार तुम्हारी बँधी हिचकियोंकी भी रसीद अपनी आँखोंमे भरकर मैंने तुम्हे दी थी।

हमारे-तुम्हारे उस बचपनके लिए वह सब ठीक था। अपनी भावनाओंकी मुझे याद है, तुम्हारी भावनाओंके सम्बन्धमें मेरी धारणा सम्भव है गलत भी हो, इसे बार-बार न दोहराकर भी मैं बराबर अपने हृदयमे स्थान दिये हूँ। फिर भी पूरी बात कहनेके लिए मुझे यही मानकर चलना है कि तुम्हारे हृदयमे मेरे प्रति आकर्षण कम नही था। तो फिर बचपनके अपने और तुम्हारे उन हार्दिक उफानोंको अब मैं उस दृष्टिसे नही देखता, और न तुम्ही देख सकती हो। समय और अनुभवने उन्हें अपना रग दे दिया है। फिर भी वे स्मृतियाँ अब मेरे लिए विशेष आदरणीय हो उठी है। मेरे लिए उनका अर्थ बदलकर और भी व्यापक हो गया है। ये सब बातें मैं उन स्मृतियो को तुम्हारे हृदयमे उभारनेके लिए नही, तुम्हारे सामने जीवनका एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रखनेके लिए लिख रहा हूँ, क्योंकि उस व्यापक प्रश्नके एक ही खण्डमे मेरा और तुम्हारा, दोनोंका सम्बन्ध है।

वह प्रश्न यह है तुम्हारा वह पिछला प्रेम अब कितने अशमें और किस रूपमें तुम्हारे हृदयमे शेष है और उसने तुम्हारे जीवनको ढालनेमें कैसा और कितना प्रभाव डाला है ?

मै जानता हूँ आजके औसत व्यक्तिके लिए इस प्रकारका प्रश्न कोई विशेष महत्त्व नही रखता। हमारे-जैसे मध्यश्रेणीके समाजकी साधारण शिक्षित महिला उत्तरमे सोचेगी, "हाँ, विवाहसे पहले मेरा अमुक नवयुवक-से गहरा प्रेम हो गया था, लेकिन मेरा-उसका जीवनका सयोग बदा नही था। मेरा दूसरी जगह विवाह हुआ। उससे बिछुडनेकी मुझे बडी पीडा हुई, ऐसा लगा, जैसे हृदय फट ही जायेगा। पर समयने सब ठीक कर दिया। धीरे-धीरे मैं उसे भूल गयी। उसकी यादमें पीडाके सिवा और रह

भी क्या गया था ? उस प्रेममे मेरी भावुकता ही तो थी ! आखिर ऐसा प्रेम ही तो सब कुछ नही है। जीवनमे और भी कर्त्तव्य है और उनकी सुविधाएँ भी देखनी पडती है। घर-गृहस्थी, बाल-बच्चे, नाते-रिश्तेदार, कुटुम्ब और समाजके व्यवहार सभी कुछ देखने पडते हैं। सभीका महत्त्व है, सभीमे सुख है, सभीमें जीवनके मीठे-कडवे अनुभव हैं। कोरे प्रेममे ही जीवनका काम नही चलता। वह भी बचपनका एक मचलना है। गृहस्थीमें धँसते ही स्त्रीके हृदयमे उसका कोई स्थान न रहना चाहिए। वैसा प्रेम केवल पतिके लिए ही होना चाहिए, और वैसे आवेशपूर्ण रूपमे तो वह पतिके लिए भी सदैव नही बना रह सकता।"

हमारे समाज और युगकी शिक्षित नारियोकी प्रतीक यह महिला अपनी पुत्रीसे, उसका किसी नवयुवकके प्रति आकर्षण होनेपर कहेगी, "बेटी, ज़िद मत करो। वह लडका तुम्हारे लिए ठीक नही है। धनमे, हैसियतमें वह तुम्हारे उपयुक्त नही है। उसे भूल जाओ। शुरूमें तुम्हे कुछ दिन पीडा होगी, फिर सब ठीक हो जायेगा।" वह अपनी बेटीके जीवनको सुखी करनेके लिए आवश्यकता पडेगी तो थोडे छल-कौशलसे भी काम ले लेगी, उस नवयुवककी ओरसे उसका मन फेरनेके लिए एक-आध बात भी गढकर कह देगी।

लेकिन अधिक जगे हुए समाजके व्यक्तिका उत्तर और दृष्टिकोण ऐसा नही होगा। वह जीवनके प्रत्येक स्नेह-सम्पर्कको याद रखेगा और उसका सम्मान करेगा। किसी भी प्रियजनको भूलनेकी, किसीसे मुँह मोडनेकी उसे आवश्यकता नही पडेगी। उसके सभी प्रेमोमें एक सुन्दर सामञ्जस्य होगा। उसकी अनुभूतियोने उसके हृदयको कोमल, उदार, सवेदनशील और प्रेमी बनाया होगा और उसकी भावुकतामें विचार और बुद्धिमत्ताका यथेष्ट पुट होगा। उसके प्रेम-सम्पर्क ही उसके जीवनको मोडनेवाले सबसे अधिक प्रबल और सुगम साधन बने होगे।

मेरा अनुमान है कि तुम इस दूसरी श्रेणीकी आत्मा हो। उन दिनो

तुम्हारे छोटे भाईकी सहायतासे चोरी-चोरी तुम्हारे स्कूली लेखोकी कापियाँ मँगवाकर मैंने पढी थी। तुमने भी मेरी उस चोरीमे सहायता की थी। तव तुम नवें-दसवें दर्जेमें पढती थी। तुम्हारे उन लेखोंसे भी तुम्हारी ऐसी महत्ताकी गन्ध मुझे आती थी। विवाहके वाद तुमने पढाई जारी रखी। पत्र-पत्रिकाओमे तुम्हारी कहानियाँ मैंने वढती हुई प्रशसाके साथ पढी। • के वाद ••••वी० ए० की भी रचनाएँ कुछ दिन तक मुझे देखनेको मिली। तुम्हारी अन्तिम रचनाओमें मेरे अनुमानोको वढानेवाली नही, तो घटानेवाली भी कोई वात नही थी। जव तुम्हारी रचनाएँ पत्रोमे आनी वन्द हो गयी, तव मैंने समझा कि तुम कुछ अधिक वच्चोकी माँ वन गयी होगी।

मुझे विश्वास होता है कि वचपनके प्रेमका तुम्हारे जीवनमे वरावर हाथ है, और उन प्रेमके प्रति तुम्हारे हृदयमें सम्मान भी है। तुम्हारे उस प्रेमका पात्र मै था, यह सोचकर मुझे कभी-कभी एक गौरवका अनुभव होने लगता है। उस प्रेमकी चर्चा अपने पतिसे करनेसे तुम्हें सम्भवत कुछ नाजुकने सकोचने रोका होगा। उन सन्दिग्ध सकोचोका भी मेरे इस पत्रसे गहरा सम्वन्ध है।

तुम्हारे पतिने यदि यह पत्र निश्शक भावसे तुम्हारे हाथमें दिया है, तो मै तुम्हे एक सहृदय और उदार जीवन-साथी पानेके लिए वधाई देता हूँ। ऐसे पत्रको अपनी पत्नीके हाथमें रख सकना, साधारण और लोकमतके पीछे सोचनेवाले पुरुषका काम नही हो सकता। तुम्हारे और उनके विचारके लिए मै पूर्वोक्त क्रमके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न रखना चाहता हूँ। ये तुम्हारे जीवनको आगे उठानेमे सहायक हो सकते है।

प्रेमका मनुष्यके जीवनमें यदि कोई ऊँचा महत्त्व है, तो क्या वचपन और नयी ज्वानीका प्रेम कोई प्रेम नही है ? वह किसी रूपमें—निस्सन्देह परिष्कृत और परिवर्त्तित रूपमें—हमारे जीवनके साथ-साथ नही चल सकता ? जीवनमे कमाये हुए कुछ प्रियजनोको भूलने या खो देनेमें क्या कोई घाटा नहीं है ? विविध प्रेम-सम्पर्कोको सजाकर क्या एक साथ इस

प्रकार नही रखा जा सकता कि सुख और मर्यादा, दोनोका निर्वाह हो सके ? प्रेमको अधिकृत या सीमित करना—उसे व्यक्ति-विशेपकी सम्पत्ति वनाना—क्या हितकर और आवश्यक है ? विकासशील व्यक्तियोंके समाजके लिए क्या यह सम्भव है ? और पति-पत्नीके वाहर भी, विपरीत सेक्सके प्रति मनुष्यके स्वाभाविक आकर्पणमें क्या कोई सार्थकता नही है ? उसके लिए क्या कोई सुखद और सुरक्षित मार्ग समाजमें नही हो सकता ?

ये प्रश्न बहुत नाजुक है और अपने हार्दिक विकासकी एक सीमा तक इन्हें टाल जाना ही समाजके लिए ठीक है। लेकिन समाजका एक काफ़ी वडा अश अब उस सीमाके वाहर निकल आया है। उसके लिए ये प्रश्न अनिवार्य है। स्त्री और पुरुपके वीच क्या सचमुच कोई ऐसी खाई है कि वे सहज स्वच्छन्द भावसे एक-दूसरेसे प्रेम नही कर सकते। यदि है तो नये समाजको उसे पाटना ही होगा। विपरीत सेक्सके प्रति आकर्पण मानवीय आकर्षणोका एक वहुत ही सुन्दर, सवल और उपयोगी भेद है। मुझे दीखता है कि त्याग और सम्मानकी सवसे अधिक प्रेरणा इसी प्रकारके आकर्पणमे मिलती है। सामूहिक रूपमें लेकर मै यह वात कह रहा हूँ। पुरुप स्त्रीके लिए और स्त्री पुरुषके लिए जितना त्याग और सम्मान कर सकेगी, उतना पुरुप पुरुपके लिए या स्त्री स्त्रीके लिए नही। सयम और सौन्दर्यकी शिक्षा भी इसीमें अधिक मिलती है। इसे ढककर, दवाकर नही, इसे विकसित और परिष्कृत करके ही हम आगे वढ सकते हैं। मानवीय सौन्दर्यकी कदर दैवी सौन्दर्यको पानेका एक चौडा मार्ग है।

मेरे पडोसमें पिछले सालसे एक परिवार आ वसा है। उस परिवारमे पन्द्रह सोलह सालकी एक लडकी है—वहुत सुन्दर, सुशील और सुसस्कृत। इस लडकीने मुझे मोह लिया है। मेरी अपनी लडकी जीवित होती, तो वह इसी उम्रकी, वहुत कुछ ऐसी ही होती। मै उससे खूब वातें करता हूँ। वह भी जैसे अपना सारा हृदय, अपने माँ-वापसे भी अधिक मेरे सामने खोलकर रख देना चाहती है। यह परिवार ग़रीव है। इस लडकीने आते

ही मेरे एक पुराने पडोसी मित्रके लडकेके हृदयपर अधिकार जमा लिया है। दोनो एक-दूसरेपर मुग्ध हैं। उनका प्रेम और सयम मैंने अपनी आँखो देखा है और उसका प्रशसक हूँ। ये दोनो परिवार नयी रोशनीके है और इनके मिलने-जुलनेमें कोई वाधा नही है। गरीवी-अमीरीका अन्तर इन दो परिवारोंके वीच वहुत वडा था। इस अन्तरको पाटकर मैंने इन दोनो प्रेमियोका विवाह निश्चित करा दिया है। मुझे लगता है कि मेरे जीवनका सवसे अधिक सफल कार्य यही हुआ है।

इस लडकीको देखकर मुझे तुम्हारी याद और भी खुलकर आने लगी है। लेकिन तुम स्त्री हो, इसलिए क्या मुझे तुम्हारी याद न करनी चाहिए ? यह भी तो निर्विवाद है कि तुम्हारे स्त्री होनेके कारण ही मुझे तुम्हारी इतनी याद आती है। सेक्सकी भिन्नता ही अधिकाशत प्रेमका प्रवेश-द्वार वनती है। लेकिन एक वार प्रेमका एक सीमा तक प्रवेश हो जानेपर वह सेक्स-भावनाके विना भी पनपता चल सकता है। तुम अव माँ वन चुकी हो—पाँच-छह वच्चे तो तुम्हारे होगे ही। लेकिन क्या माँ वन जानेसे स्त्रीत्वकी समाप्ति हो जाती है ? कुछ स्त्रियाँ जान-वूझकर ऐसा कर वैठती है, पर मैं इसे समाजके प्रति एक वडा अपराध मानता हूँ। मैं समझता हूँ कि प्रत्येक स्त्रीको प्रत्येक पुरुषकी दृष्टिमें सुन्दर और आकर्षक जँचना चाहिए। विवाहके तीसरे वर्ष ही ढल जानेवाली नवयुवतियोकी सख्या हमारे भारतीय समाजमें निन्नानवे प्रतिशत है। यह हमारे समाजका एक भयकर शारीरिक और मानसिक रोग है। मानसिक स्वास्थ्य और प्रसन्नताने इनका गहरा सम्वन्ध है।

मैं डाक्टर हूँ। तुम्हे शायद याद हो, तुम्हारे विवाहके वर्ष मैं डाक्टरी पढ रहा था। अँगरेजी प्रणालीको छोडकर अव मैं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही अपने छोटे-से क़स्वेकी सेवा करता हूँ। मेरी चिकित्सामे आये हुए अनेक परिवारोकी नवयुवतियोको मैं उनके शारीरिक गठनकी रक्षा, और किसी-किसी दशामे उसकी पुन प्राप्तिके प्राकृतिक साधन वता चुका हूँ।

इसे भी मैं अपनी एक सन्तोषजनक सेवा मानता हूँ। अभी जन साधारणको ऐसी बातोकी कदर सुथरी दृष्टिसे नही है। मैने वैसी दृष्टिसे देखना एक हद तक सीख लिया है। इन शब्दोके साथ तुम्हारा चित्र अपनी आँखोंके सामने लाते हुए भी मेरी यह दृष्टि मेरे साथ है।

अगली सोलह दिसम्बरको तुम्हारी इकतालीसवी वर्षगांठ होगी। उस त्योहारके दिन, मान लो, मै सपरिवार तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ, तो तुम हमारा कैसा सत्कार कर सकोगी ? मै तुम्हें उस समय निस्सन्देह एक प्रसन्न-वदना, सुसज्जिता, सत्कारमयी सुन्दरीके रूपमें देखना पसन्द करूँगा। तुम्हारे भीतर थोडी-सी लाज और उस बचपनवाले आकर्षणका भी झीना-सा पुट मुझे प्रिय लगेगा। उन दिनोकी भावनाओका किसी सीमा तक खुला हुआ विश्लेषण और अध्ययन भी तुम्हारे साथ बैठकर यदि मै कर सकूँगा, तो उसे एक बडा लाभ समझूँगा। अपनी चालीस वर्षकी अवस्थामें यदि तुम अपने-आपको युवावस्थाके पार समझने लगी हो, तो मैं तुम्हारा प्रबल विरोध करूँगा और तुम्हें मुझसे सहमत होना पडेगा। बचपन और बुढापा मनुष्यकी गुज़रती हुई, अस्थायी अवस्थाएँ है। यौवन ही उसकी चिरस्थायी अवस्था है। अखण्ड जीवनका थोडा-सा अध्ययन इस बातको स्पष्ट कर देता है।

मेरी पत्नी तुमसे मिलकर बहुत प्रसन्न होगी। हम दोनोने तुम्हारे विषयमें बहुत बातें की हैं। तुम्हारे प्रति उसका अनुराग हो गया है। वह अकसर सोचती है कि तुम्हें कैसे पति मिले होगे। बीस और चौदहकी आयु के हमारे दो पुत्र है। दोनो अभी पढते है। हम दोनो सचमुच सपरिवार आकर तुमसे मिलने और तुम्हारे निकट आत्मीय बननेके लिए उत्सुक है।

मानव-मात्रका सबसे बडा और स्थायी नाता मित्रताका है। पति-पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र आदिके नाते उसके विविध विभाग है। उगते समाज-का ऐसा ही दृष्टिकोण मुझे जान पडता है। व्यापक दृष्टिकोणसे देखने पर क्या यह सम्भव नही कि दो मित्र अलग-अलग जन्मोमें कभी पति-पत्नी,

कभी भाई-बहिन, कभी पिता-पुत्र बनकर संसारमें रहते हो ? स्नेहके साथ यथेष्ट सम्मान और स्वतन्त्रताका रंग मिला देनेसे जो वस्तु बनती है, उसे मित्रता ही तो कह सकते हैं।

समाजके हृदयमें ऐसी मित्रताके विकासके लिए जहाँ योनि-भेदकी दीवारोंको काटने-छाँटनेकी आवश्यकता है, वहाँ दो एकाकी व्यक्तियोंके बीच प्रेमकी अपेक्षा दो दम्पतियोंके बीच वैसा सम्पर्क अधिक सुरक्षित भी है। समाजके भीतर स्नेह और समझदारीको पनपने देनेका यही मार्ग मुझे दीखता है। और अपने व्यक्तिगत मामलेमें, कोई मार्ग निकालनेकी उत्कण्ठासे पहले, अपनी हार्दिक लालसावश मैं तुमसे, तुम्हारे परिवारसे मिलना चाहता हूँ।

मेरा यह पत्र यदि समाजके सामने रखा जाये, तो मैं सोच सकता हूँ वह इसे कितनी सशङ्क आँखोंसे देखेगा। लेकिन मैं सिवा इस कामनाके कि वह इसे अच्छेसे-अच्छा अर्थ पहनाकर भी एक बार देखनेका प्रयत्न करे, और कुछ नहीं कह सकता। यह भी ठीक है कि जिस भावनासे प्रेरित होकर मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ, वह यही है कि मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता। तुम्हारे गुणोंका मैं स्वयं भी रसास्वादन करना चाहता हूँ और अपने समाजके लिए तुम्हें फलती-फूलती देखना चाहता हूँ।

इस पत्रके उत्तरमें यदि तुम मुझे लिख सकोगी तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।

तुम्हारा

× × ×

यह पत्र पढ़कर उन सज्जनको लौटाते हुए मैंने कोई सलाह देनेमें अपनी असमर्थता ही प्रकट की। यह पत्र वह अपनी पत्नीके हाथमें दें या न दें, भला मैं क्या कहता ?

❍

प्रश्न-पत्र

इन पक्तियोका लेखक मैं वह हूँ जिसे तुमने परसो (सोमवारको) कश्मीरी दरवाज़ेसे कॅनॉट प्लेसको जानेवाली नौ नम्बरकी बसपर अपने सामनेकी सीटपर देखा था। अपने परिचयका इतना सङ्केत निस्सन्देह तुम्हारे लिए काफी है, क्योकि तुम मुझे इतनी जल्दी भूल नही सकती हो। जिसकी सहज दृष्टिसे किसी सुन्दर लडकीको बीस मिनटके भीतर सात बार झुँझलाना और इधर-उधर मुँह फेरना पडा हो, उसे वह इतनी जल्दी भूल नही सकती।

उस बसके सफरमें कई बार तुमपर मेरी दृष्टि पडनेसे तुम्हे जो कष्ट हुआ वह मुझसे छिपा नही है, फिर भी अगर वह सफर बीस मिनट तक और चलता तो मैं कमसे-कम दस बार और तुम्हें उसी तरह देखना पसन्द करता।

यह पत्र तुम्हारे पास डाक-द्वारा कैसे पहुँच रहा है, यह तुम्हारे लिए आश्चर्यकी बात तो होगी ही, लेकिन आश्चर्यसे अधिक झुँझलाहट और क्रोधकी सामग्री यह पहले जुटायेगा। तुम चाहोगी तो इन सब बातोका समाधान भी आगे हो जायेगा।

तुम सुन्दर हो, विशेष सुन्दर, इससे तुम्हें देखनेवाला कोई भी इनकार नही कर सकता। प्रत्येक पुरुषकी मुग्ध, और मुग्ध नही तो कमसे-कम प्रशसा-भरी दृष्टि तुमपर पडना स्वाभाविक है, और मेरे लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है कि मैंने तुम्हें उस दिन प्रशसा-भरी ही नही, मुग्धताकी भी दृष्टिसे देखा है। मैं जानता हूँ कि इस वाक्यको पढकर भी तुम इस पत्रको पूरा पढे बिना फाडकर फेंक नही सकोगी।

एक आवश्यक प्रश्न तुम्हारे सामने रखनेके लिए मैंने यह पत्र तुम्हारे

पास भेजनेका साहस और प्रबन्ध किया है। प्रश्न मुझसे उतना अधिक नही, तुम्हारी परिस्थितिसे ही विशेष सम्बन्ध रखता है। वह तुम्हारा ही नही, तुम जैसी प्राय सभी सुन्दर लडकियोका प्रश्न है।

अपने घरसे कॉलेज, बाजार या दूसरी सहेलियो-सम्बन्धियोके घर तुम्हे अकसर अकेले या घर-परिचयकी कुछ स्त्रियोके साथ पैदल या सवारीपर जाना पडता है। सैकडो अपरिचित आँखें राहमें तुम्हारे रूपका अभिनन्दन करती है। अनेक आँखें गर्दन-समेत घूमकर तुम्हे अधिकसे-अधिक देर तक देखती रहना चाहती है। ऐसोसे तुम्हे खीज होना स्वाभाविक है। जो असुन्दर, अशिष्ट और अधिक उम्रके लोग तुम्हें आँख भरकर देखते है, उनसे भी तुम्हें स्वभावतया घृणा हो सकती है। लेकिन कुछ प्रिय प्रकारके युवकोकी सयत दृष्टि परखनेपर तुम्हें गर्व, सन्तोष और भावुकताका सुख न मिलता हो, यह भी असम्भव है। रूप या भावनाके सुन्दर कुछ परिचित युवकोपर स्वय तुम्हारी भी मुग्धता-प्रशसा-भरी दृष्टि पडती रहना कोई अनहोनी बात नही है। दूसरे भले व्यक्तियोकी दृष्टिमे सुन्दर दीखनेकी लालसा और अपनी दृष्टिमे जो सुन्दर दीख पडें उनपर कुछ-कुछ मुग्ध होनेकी प्रवृत्ति तुम-जैसी सुन्दर लडकियोका हार्दिक धर्म है, भले ही उनके माता-पिताओ या नव-परिणीत पतियोका सिखाया हुआ धर्म इससे कुछ भिन्न हो।

मैंने अपनी सात वर्षसे चलती हुई युवावस्थामें अनेक सुन्दर लड-कियोको गहरी दृष्टिसे देखा है, लेकिन कम ही सुन्दर लडकियोने मुझे तुम्हारे बराबर आकृष्ट किया है। मै तुम्हें बता दूँ कि मैं तुमसे गहरा प्रेम करने लगा हूँ तो पता नही, तुम क्या सोचोगी। लेकिन मालती, मैं तुमसे प्रेम करने लगा हूँ, और इस प्रेमका कारण केवल तुम्हारा रूप ही नही है। तुम्हारी मधुर भावुकता, जो तुम्हारी आँखोमें रह-रहकर झलक उठती है, उससे तुम अनभिज्ञ नही हो सकती। तुम्हारी वैसी भावना-भरी दृष्टि मैने पहले भी कई बार देखी थी। निस्सन्देह उस समय तुम अपने किसी प्रेमीके ध्यानमे थी। तुम्हारे प्रति मेरे आकर्षणका तुम्हारे रूप और

भावुकतासे भिन्न भी कुछ कारण है। तुम्हारी ओरसे किसी सहृदय प्रतिक्रियाकी आशा करनेसे पहले मुझे कुछ और भी स्पष्ट करना चाहिए।

पहली बात यह है कि तुमने मुझे जितना असुन्दर या कम सुन्दर समझा है, मैं उतना नही हूँ। तुम्हारी उस समयकी उपेक्षा और तिरस्कार-भावका अर्थ स्पष्टतया यह भी था कि तुम मुझे सौन्दर्य और शिष्टताके मामलेमें बहुत कम-हैसियत समझती हो। लेकिन न मैं असुन्दर हूँ, न अशिष्ट; मैं पूर्ण शिष्ट और भरपूर सुन्दर हूँ। अलबत्ता मैं अपने सौन्दर्यको सडकोपर खोले हुए नही चलता। कपडोकी सादगी और रूप-प्रदर्शनकी ओरसे लापरवाही मेरी स्वभावगत बातें है। तुमने एक बार भी मुझे सहज सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखा होता तो मेरी इन बातोमे सहमत होनेमें तुम्हें कठिनाई न होती। मेरे शरीरका रग आजकलकी सुन्दर लडकियो और अमीर लडकोके बराबर गोरा नही है, पर रग तो सौन्दर्यका एक बहुत छोटा-सा भाग है। उसके बिना भी मैं बहुत सुन्दर हूँ। मेरे पास इस समय मौजूद नही हैं, नही तो मैं कुछ विशेष सुन्दर लडकियोके दिये हुए प्रमाण-पत्र इसी लिफाफेमें भेजता और उनसे तुम्हें विश्वास करना ही पडता कि मैं सुन्दर ही हूँ। उन प्रमाण-पत्रोको देनेवाली कुछ लडकियाँ तुम्हारी परिचित अवश्य निकलती। रूपकी परख, उसके प्रोत्साहन और समुचित प्रयोगमें मैंने विशेष जानकारी प्राप्त की है और इनपर मेरा कुछ विशेष अधिकार भी है। अनेक सुन्दर लडकियोको मैंने अपनी इस जानकारी और स्वभावसे लाभ पहुँचाया है, और उनमें से बहुत-सी मेरी कृतज्ञ ही नही, मुझपर मुग्ध भी हैं। मुझ-जैसे सुन्दर व्यक्ति उन्हें अब खोजनेपर कठिनाईसे इने-गिने ही मिल सकते है। मुझे यह देखकर कुछ खेद भी है कि तुम्हें, जिसकी ओर मैं इतना अधिक आकृष्ट हुआ हूँ, सौन्दर्यको परखने और उसका यथोचित सत्कार करनेकी दृष्टि प्राप्त नही है। तुम्हें अपने अति सुन्दर रूपकी भी ठीक क़दर होगी, इसमे भी मुझे सन्देह है। तुम अपने रूपकी कुछ बहुत साधारण बातोपर विशेष मुग्ध, और उसकी

कुछ भीतरी सुन्दरताओंसे अनभिज्ञ होगी, यह मेरी निश्चित धारणा है। शरीरके आकर्षक सौन्दर्यको चमकीले-भडकीले शृंगारमे ढकना और आँखोंकी मोहक सहृदयताको निरादर या उपेक्षाकी चितवनमे दवाना सुन्दर लडकियोकी एक वहुत वडी नादानी है। इन दोनो वातोमें तुम मुझे आम सुन्दर लडकियोंसे भिन्न नही जान पडती हो। सुन्दर लडकियोके लिए यदि कोई ऐसा कानून वन सके कि वे अपने रूपसे अधिक सुन्दर कपडे न पहनें, और अपनी सोची-समझी सहृदयताके विपरीत किसीको कठोरता, सन्देह या अनादरकी दृष्टिसे न देखें, तो उनका वडा उपकार हो सकता है।

तुम्हारे भीतर इन आम कमियोंके होते हुए भी मैं उस समयसे तुमसे असाधारण प्रेम करने लगा हूँ, क्योकि तुम मुझे भीतरसे वाहर तक विशेष सुन्दर दीख पडी हो। प्रेम मैंने अनेक लडकियोसे किया है, पर तुमने विशेष रूपसे मुझे आकृष्ट किया है। मेरे प्रेमका यदि तुमने उचित स्वागत किया—और उचित स्वागत तुम्हें करना ही पडेगा क्योकि अपने प्रेमके वलमें मेरा पूरा विश्वास है—तो इस विशेष आकर्षणका भेद भी तुम्हारे सामने खुल जायेगा। इस सवके लिए मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि अपने हृदयकी उदारताको आगे लानेका प्रयत्न करो। लेकिन किसी अशिष्ट व्यक्तिके लिए उदारताका भाव लेकर उसके प्रेमका स्वागत करना एक वहुत कठिन काम है। किसी सुन्दर लडकीको उसकी उपेक्षा-तिरस्कार-भरी दृष्टिके वावजूद भी वार-वार देखनेकी काररवाई सचमुच एक वहुत भद्दी अशिष्टता है, लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियोमें वही एक अत्यन्त उदार शिष्टता भी हो सकती है। क्या यह सम्भव नही कि किसीकी सहज प्रशसा-भरी दृष्टिका वदला खोटे सन्देह और उपेक्षा-तिरस्कारकी दृष्टिसे देना भी एक भद्दी अशिष्टता ही हो? अगर किसी सुन्दर लडकीकी वैसी दृष्टि किसी अवसरपर अशिष्टताकी श्रेणीमें आती हो तो उस दशामे उसे उदारतापूर्वक उसी सहज प्रशसा-भरी दृष्टिसे देखते रहना पूरी शिष्टताका सूचक भी हो सकता है, विशेपकर जव उसे देखनेमें कोई जिज्ञासा भी

सम्मिलित हो। मैंने इस पत्रके प्रारम्भमे लिखा था कि अगर उस दिनका वह सफर बीस मिनट और चालू रहता तो मै दस बार और तुम्हे उसी प्रकार देखना पसन्द करता, लेकिन उसका यह अर्थ नही है कि मै सचमुच ऐसा करता ही। अपने और तुम्हारे बीच मै कोई ऐसा दृश्य नही उपस्थित होने दे सकता था जो दूसरोका ध्यान हमारी ओर आकर्षित करे। तुम्हारी उलझन-भरी चेष्टाओमे मुझे जितना सुख मिल रहा था, उन चेष्टाओको दूसरोकी दृष्टिसे बचानेका भी मुझे उतना ही ध्यान था। उस सारे दृश्यको अपनी कल्पनामे दोहरानेपर तुम इसका समर्थन कर सकती हो।

ज्यो-ज्यो मै तुम्हारे बारेमे सोचता हूँ, उतना ही तुमपर मेरा अनुराग बढता जाता है और उतना ही अधिक मै अपने सभी परिचित-अपरिचित प्रियजनोके सामने तुम्हारी चर्चा करनेके लिए उत्सुक होता जाता हूँ। तुमसे पहले मैने ऐसी कोई भी सुन्दर लडकी नही देखी थी जिसकी झुँझलाहटमें भी इतना माधुर्य हो। मै सोचता हूँ कि तुम्हारी तिरस्कार-भरी झुँझलाहटमें जब इतनी मिठास है तो स्वीकृति-भरे स्वागतमे कितनी मिठास होगी! अपने रूपका मुझसे बडा पारखी-पुजारी तुम दूसरा कठिनतासे ही कोई खोज सकोगी।

इस पत्रको इतना पढ चुकनेपर तो स्वभावतया तुम्हे भी मुझसे प्रेम करने लग जाना चाहिए, लेकिन उस प्रेमके बीच तुमने कुछ दीवारे खडी कर रखी होगी। पहली दीवार इसी बातकी होगी कि तुम मुझे सुन्दर नही समझती हो। दूसरी दीवार सम्भवत किसी व्यक्ति-विशेषके प्रति तुम्हारा प्रेम होगा, जिसे तुम पहलेसे ही अपना पूरा हृदय दे चुकी होगी। तीसरी दीवार वह धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र होगा, जिसे तुमने अपने बचपनसे अपने माता-पिता और गुरुजनोके सत्सङ्गमे प्रतिदिन पढा होगा और जिसके अनुसार स्त्रियोका एकसे अधिक पुरुषोसे प्रेम करना वर्जित होगा। चौथी दीवार—यदि यह तीसरी दीवार कुछ कमज़ोर या

पतली होगी तो—लोकलाज और लोकमतसे उत्पन्न विवशताकी होगी जिसके अनुसार दूसरोंके प्रति उदारता, सहानुभूति और प्रशंसाकी भावनाओंका व्यवहारमें आना अक्षम्य समझा जाता है। ये और ऐसी ही कुछ और दीवारें तुमने अपने और अपने किसी भी ऐसे सम्भावित प्रेमीके बीच खडी कर रखी होगी जो पहली दृष्टिमे तुम्हे यथेष्ट सुन्दर न दीख पडे। लेकिन प्रेमको बाधक ये दीवारे कुछ भी और कितनी भी हो और तुम्हारे पढे-लिखे आचार-विचार कैसे भी हो तुम्हारे अन्तस्तलकी आवाज़ किसीके भी प्रेमकी पुकारके विपरीत नही जा सकती, क्योकि तुम्हारा—और सभी सुन्दर लडकियोका—भीतरी हार्दिक धर्म कुछ ऐसा ही है। मैं कभी-कभी जानना चाहता हूँ कि आजकलकी सुन्दर किन्तु बडे-बूढोंके धार्मिक वातावरणमें पली हुई लडकियोको सचमुच कोई ऐसा सच्चा गहरा प्रेमी मिल जाये—मिसालके लिए जैसा मजनूं लैलाको मिल गया था—और वह किसी तरह उनके पढे-लिखे धार्मिक आचारके कुछ विरुद्ध बैठता हो और जिससे समाजमे उनकी कुछ विडम्बना भी होती हो तो उनमें से कितनी उसे स्वीकार करेंगी और कितनी अस्वीकार? मुझमे मालती, इतनी शक्ति है कि तुम्हारी उदासीनताकी भी परवाह न करके तुमसे इतने ही वेगके साथ प्रेम कर सकता हूँ, जितने बलके साथ मजनूँने लैलासे किया था। मेरा वह प्रेम मजनूँकी-सी दीवानगीके बिना भी हो सकता है। अन्तमे अपने प्रेमकी विजयपर मुझे कोई सन्देह नही है। तुम्हारा आकर्षण मुझे तुम्हारे प्रति ऐसे ही असाधारण प्रेमके लिए निमन्त्रित कर रहा है।

निष्क्रिय और निरर्थक प्रेममें मेरा विश्वास नही है, इसलिए इस पत्रको मैं निष्फल रह जानेके लिए नही लिख रहा हूँ। यह निस्सन्देह मेरे तुम्हारे सम्पर्कका प्रारम्भ करायेगा। समाज, परिवार या तुम्हारी विवशतासे उत्पन्न कोई भी बाधाएँ इस सम्पर्कको रोक नही सकेंगी। इस पत्रपर तुम्हारी झुंझलाहट भी इस सम्पर्कमें अधिक समय तक बाधा नही डाल सकेगी। इस सम्पर्कके सुविधा-पूर्वक स्थापनके लिए मुझे तुम्हारा या तुम्हारे

परिवार और समाजका कोई अपहरण भी नही करना पडेगा, क्योंकि हम-तुम प्रेमके उस आँगनमें मिलेंगे जिसपर साधारणतया लोगोंकी दृष्टि अभी नही पहुँचती। सचमुच मैं तुमसे मिलूँगा, तुम्हारे ही घरपर। अधिकसे-अधिक यह हो सकता है कि तुम उस मिलनको जागृतिका मिलन न मानकर कुछ देरके लिए स्वप्नका ही मिलन समझो।

इस पत्रसे तुम्हारे भाव और सम्मानको कुछ चोट पहुँचे तो इसे भूल जाना। मन न माने तो इसे फाडकर भी फेंक देना, मेरे पास इसकी प्रतिलिपि सुरक्षित रहेगी। उस बसके सफरमें उतनी ही देरतक मेरे सम्बन्ध में सोचकर—भले ही वह सोचना आदर-प्रेमका न होकर तिरस्कारका ही हो, उससे कोई अन्तर नहीं पडता—तुमने मुझपर कुछ अधिकार पा लिया है और मैं तुमसे प्रेम करनेके लिए उत्सुक ही नही, बाध्य भी हूँ। अगली भेंटसे पहले, तबतक तुम प्रेमकी समस्यापर कुछ थोडा-सा विचार कर रखोगी तो अच्छा करोगी। यह प्रेम हृदयमें—विशेषकर सुन्दर तरुणियो और तरुणोंके हृदयमें—कहाँसे आता है, क्यो आता है, वह सीखे हुए धर्म-आचारके विपरीत प्रत्येक सुन्दर रूपकी ओर क्यो जाता है, प्रेमकी माँग क्या है, प्रेमका उत्तर क्या है, उसमे बन्धनकी आवश्यकता क्यो और कहाँतक है, उसकी स्वच्छन्दताकी सीमाएँ क्या होनी चाहिएँ, उसकी सार्थकता क्या है, उसका अन्तिम रूप और ध्येय क्या हो सकता है आदि प्रेम-सम्बन्धी सभी प्रश्नोपर तुम जितना विचार कर सको कर रखना। विचार स्वतन्त्र रूपसे, अपनी स्वतन्त्र बुद्धिसे करना, दूसरोंकी अन्ध-धारणाओंसे नही, तभी तुम किसी ठीक नतीजेपर पहुँच सकोगी। भय, अनुगमन, पूर्वधारणा, अदूरदर्शिताके बन्धनोंसे शक्तिभर मुक्त होकर ही इन प्रश्नोको हल करनेका प्रयत्न करना—विशेषकर अदूरदर्शिताके बन्धनोंसे मुक्त होकर, और केवल अपनी ही सहृदय बुद्धिसे।

तुम्हारा प्रेमी
(नाम मिलनेपर ही बताऊँगा)

मालतीने यह पत्र पढा। पढते ही उसे लगा कि इससे बढकर उसका अपमान जीवन-भरमें कभी नही हुआ था। एक साधारण राह चलते अपरिचितका इतना साहस! पत्र-लेखककी मूर्ति स्पष्ट होकर उसकी आंखोंके सामने झूलने लगी। ज्यो-ज्यो उस मूर्तिको वह अपनी कल्पना-दृष्टिके सामने लाती, उसे लगता कि वह भयङ्कर उपहास-पूर्वक उसका अपमान कर रही है। एक ऐसे अपरिचित व्यक्तिका इस तरह उसके पीछे पडना मालतीको असह्य हो उठा। फिर भी उसने पत्र दो बार पढा, तिवारा पढा। उसका क्षोभ अब स्थिर न रह सका। उस पत्रमें उसे कुछ विचारणीय बातें दिखायी दी। पत्र-लेखकका उद्देश्य एकदम असह्य नही है, उसे कुछ देर बाद लगा। मालतीने चौथी बार उस पत्रको पढना आरम्भ किया था कि उसकी सासने कमरेमें प्रवेश किया।

"सरोजिनी कल नही आयी, आज भी अभीतक नही आयी, क्या उसकी कोई चिट्ठी आयी है?" सासने अपनी नव-विवाहिता पुत्र-वधू मालती-से पूछा।

"नही, उनका तो कोई पत्र नही आया," मालतीने सकपकाहटके साथ हाथके पत्रको छिपाते हुए कहा, "यह तो इनके किसी दोस्तका पत्र है।"

सास बाहर चली गयी। मालतीकी चचेरी बहिन सरोजिनीकी दो दिनसे इस घरमें प्रतीक्षा हो रही थी। वह अपने पतिके साथ इलाहाबादसे कुछ दिनके लिए दिल्ली आनेवाली थी। मालती और सरोजिनी बहनोंसे अधिक एक दूसरेकी अभिन्न-हृदया सहेलियाँ थी और उनकी आयुमें कुछ ही महीनोंका अन्तर था। सरोजिनीका विवाह पिछले वर्ष इलाहाबादके एक कॉलेजके नवयुवक लेक्चरर राजीवनयनके साथ हुआ था और मालतीका अभी इसी वर्ष सेक्रेटेरिएटके सहकारी उमाकान्त, एक विशेष आकर्षक और साहित्यानुरागी नवयुवकसे।

उस शाम उमाकान्त जब दफ्तरसे लौटे तो राजीवनयन उनके साथ थे। राजीव और उमाकान्त अपने विवाहके पहलेसे ही एक दूसरेके मित्र

थे और उमाकान्तकी मां राजीवको भी अपने बेटे-जैसा ही मानती थी। मालतीको अभीतक राजीवसे मिलनेका अवसर नही मिला था, सयोगवश वह सरोजिनीके विवाहमे उपस्थित न हो सकी थी। सरोजिनी कार्यवश इस समय दिल्ली न आ पायी थी और राजीवको अकेले ही आना पडा था।

मालतीने जब आंगनमे आकर राजीवको प्रणाम किया तब उसपर दृष्टि पडते ही उसका मुख लाज, सकोच और भावातिरेकसे एकदम आरक्त हो उठा। उसे ही उसने पिछले दिन कश्मीरी दरवाजेसे बसपर आते समय देखा था।

"मां, तुम्हारी यह बहू तो इतनी सुन्दर है कि मै इससे गहरा प्रेम करने लगा हूँ।" राजीवने मांको सम्बोधित करते हुए कहा।

मां हँस पडी, "प्रेम नही तो क्या इससे तुम दुश्मनी करोगे। जबसे यह आयी है, इसने घर-भरको मोह रखा है।" मांने कहा।

"और देखो उमा," राजीवने उमाकान्तकी ओर मुँह फेरते हुए कहा, "आज रातको तुम्हारी साहित्य-गोष्ठीमें मैं अपनी जो रचना पढूँगा वह मालतीके पास पहलेसे ही पहुँच चुकी है।"

"आपमें इतनी शरारत भरी होगी, उफ मैं नही सोच सकती थी! मेरे पास आपकी कोई रचना नही पहुँची।" मालती बोल उठी।

"नहीं पहुँची तो कोई हर्ज नही, मेरे पास उसकी प्रतिलिपि है। उसे तुम्हारे नाम लिखनेका मेरा विशेप अभिप्राय यही था कि तुम उसका कुछ उत्तर लिख रखो, जिससे वह भी गोष्ठीमें पढा जा सके।"

रूपकी पहचान

प्रिय सरोजिनी,

हरीश दादाके पत्रके साथ तुम्हे भी यह परचा भेज रही हूँ। पत्रवाहक सज्जन श्री रूपकमल नागर हमारे घरके ही व्यक्ति हैं। मेरी दोनो ननद सन्ध्या और मनोरमाको इन्होने तीन साल तक घरमें पढाया है। अब यह ज्ञानपुरमें ही रहेंगे। दादाको मैंने लिखा है कि इनके लिए काम ढूँढनेमें अवश्य कुछ सहायता करें। तुम भी इनका ध्यान रखना। वहुत भले आदमी हैं। मैंने दादाको लिखा है कि रागिनीको पढाने कोई मास्टर न आता हो, तो उसे पढानेका काम ही इनके सुपुर्द कर दें। २५-३० रुपये महीनेका सहारा भी अभी इनके लिए वहुत है। इनकी आर्थिक दशा अच्छी नही है। माताजीसे भी सिफारिश करा देना। तुम्हारे भटनागर साहव एक सप्ताहके लिए नागपुर गये है, इसीलिए मै ही यह पत्र लिख रही हूँ। माताजीको प्रणाम कहना, वच्चोको प्यार।

[१८-७-१९५५]

तुम्हारी
सुभद्रा

●

प्रिय सुभद्रा,

नागरजी द्वारा तुम्हारा पत्र मिला। रागिनीका ट्यूशन दादाने उन्हें दे दिया है। हमारे कॉलेजमें एक लाएब्रेरियनकी जगह खाली है, उसे भी उन्हें दिलानेकी कोशिश वे कर रहे हैं। पढाई शुरू हो गयी है। थर्ड इयरमे तो मैंने खूब छुट्टियाँ मनायी थीं, लेकिन यह फाइनल है। खूब पिसाई करनी पड़ेगी। वेचारी नलिनीको तो प्रेमका रोग लग गया है। हमारा-तुम्हारा वह अनुमान ठीक ही निकला। हमेशाके लिए वह घुल रही है, वेचारी।

जात-बिरादरीकी दीवार बीचमें और भी चौडी है। तुम कुछ सलाह दे सकती हो ? उसके माँ-बापको अभी पूरा हाल मालूम नही है। उनका राजी होना कठिन है। नलिनीकी पढाई खत्म ही समझो, अब वह क्या पढेगी ! हम तीनो सहेलियोमें तुम्ही सबसे अच्छी निकली—रोगके पहले ही दवाके पल्ले बँध गयी।

उमेशको और उसके परिवारको तुम जानती हो। नलिनीके लिए हम लोग क्या कर सकती है, लिखना। माँ आशीर्वाद कहती हैं।

२५–७–१९५५]

तुम्हारी
सरोजिनी

●

प्रिय सरोजिनी,

पत्र मिला। आखिर वह समस्या सामने आयी ही। उमेश बाबूको मैं नलिनीके लिए हर तरह योग्य समझती हूँ। भटनागर साहबकी नलिनीसे पूरी सहानुभूति है, उससे कह देना। वह नलिनीके पिताजीके एक खास मित्रको इस सम्बन्धमे पत्र लिख रहे हैं। उनके ऊपर, आशा है, काफी जोर पड जायेगा। उधर उमेश बाबूके पिताकी ओरसे ही यह प्रस्ताव उठानेका रास्ता है। कोशिश करगे ही। इस नलिनीने तो हम लोगोको भी बडी परेशानीमे डाल रखा है। उससे कहना, प्राण न दे। उसका मनचीता वर दिलानेमें हम लोग कोई कसर उठा न रखेंगे, चाहे इसके लिए कन्याका तो क्या, वरका भी अपहरण क्यो न करना पडे।

और सरोज, तुम्हारी ओरसे भी मैं निश्चिन्त नही हूँ। तुम भी किसीमे आँखें न फँसा बैठना। नागरजीको मैंने तुम्हारे घर लगवा तो दिया है, पर अब कुछ शकित हो उठी हूँ। अपनी भावुकता और इनकी रसिकतामे बहने न लगना, सावधान ! बेबी शोर मचा रही है। फिर लिखूँगी।

२६–७–१९५५]

तुम्हारी
सुभद्रा

●

प्रिय सुभद्रा,

नलिनीको मैंने तुम्हारी चिट्ठी दिखायी। पढकर उसके आँसू आ गये। तुम्हारे प्रति उसका कृतज्ञ होना स्वाभाविक ही है। देखें, बेचारीका क्या होता है।

नागरजीकी बात तुमने खूब लिखी। मैं—और उनसे प्रेम करूँगी? इस घरमें तो उनसे प्रेम करनेवाले केवल दो हैं—रघू, हमारी महराजिनका लडका जो नवें दर्जेमें पढता है, और हीरो, पुरानी कुतियाका सपूत। महराजिनकी लडकी हरदेई अगर जिन्दा होती, तो शायद वह भी नागरजीसे प्रेम करने लगती। तुम्हें याद है, कितनी बदशकल थी वह? बेचारी पिछले साल पन्द्रह बरसकी चढती जवानीमें टाइफाइडसे चल बसी। नागरजीकी लिमिड-फिसिड धोती, सिलबिल्ला सिकुडनदार कुरता, घिसी हुई चप्पलें और सिरपर दुपल्ली टोपी! हजामत भी शायद हफ्तेमें दो बार ही बनाते हैं। असली बात यह है कि तुम्हारा यह मजाक़ मुझे कुछ बुरा भी लगा। उनमें न निजका रूप-रग है और न दूसरेके रूप-रगकी क़दर है। उन्हें न जाने किस बातका कुछ घमण्ड भी है। साधारण भलमनसाहत भी उनमें नही है। कल ही उन्होंने मेरा एक लेख टाइप कर देनेसे इनकार कर दिया था, जब कि रागिनीको पढानेकी ओरसे कल उन्हें छुट्टी मिल गयी थी। मुझे प्रेम करना होगा, तो क्या तुम समझती हो कि कानपुरमें कोई भले लडके नही रह गये हैं? फिर नागरजी तो मेरे घर हर रोज़ तेरह आने पैसोंके लिए आते हैं। मैं नही समझती, नागरजीके लिए ऐसी बात तुमने कैसे लिखी!

२-८-१९५५]

तुम्हारी सखी
सरोजिनी

प्रिय सरोजिनी,

तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता यह जानकर कि नागरजी तुम्हारे सुन्दर रूपके बन्धनसे बचे हुए हैं। ऐसा न होता, तो वह तुम्हे प्रसन्न रखते और छोटी-छोटी बातोंके लिए इनकार न करते। मैं इसे उनके बडप्पनका एक और प्रमाण मानती हूँ। उनकी घिसी चप्पलें और सिकुडनदार कुरतेका समाचार जानकर कुछ दु ख भी हुआ। अवश्य ही पैसेकी विशेष तगी होगी, नही तो पोशाककी सफाई और सुन्दरताके वह बहुत पाबन्द हैं। इनके कपडेपर शिकन, कपडेकी कमीके कारण ही रह सकती है। तुमने अबतक यह नही लिखा कि उन्हे दूसरा काम मिला या नही ? लाएब्रेरियनवाली जगहका क्या हुआ ? उसमे तनख्वाह कितनी है ?

नागरजीके सम्बन्धमे मैंने तुम्हे जो लिखा वह इसी विचारमे कि यदि तुम उनसे प्रेम करने लगी होगी तो अच्छी ही बात होगी। मै दादाके सामने उन्हींके साथ तुम्हारे विवाहका प्रस्ताव रखना पसन्द करती। उनमें और सब कुछ है, केवल पैसा नही है, और पैसा तुम्हारे पिताजी काफीसे अधिक छोड गये हैं। मेरी मानो तो तुम्हे किसी गरीब, लेकिन सर्वथा योग्य युवकसे ही विवाह करना चाहिए। नागरजीको तुमने नही देखा, मैंने देखा है। उन्हें पाकर हमारे-तुम्हारे दर्जेकी कोई भी नवयुवती कृतार्थ हो सकती है। नागरजीके नही, अपने और अपने ही उस स्वजनके स्वार्थको सामने रखकर मैं चाहती हूँ कि मेरी कोई घरकी या मित्र-परिवारकी लडकी उन्हें वर-रूपमे वरण करे।

नागरजीसे तुम्हारा प्रेम नही है, यह कोई बुरी बात नही है। लेकिन उनपर तुम्हारा यह बिगडना बेजा है। उनसे रागिनीकी पढाईमे बाहर कोई दूसरा काम लेनेका तुम्हें कोई अधिकार नही है, जब कि तुम उन्हें बराबरीकी दृष्टिसे भी नही देखती हो। इतना पर-सम्मान तो तुम्हे जाना ही चाहिए। ट्यूशनके कारण क्या तुम उन्हें अपना नौकर हो समझना

चाहती हो ? अनुभव, आयु और कॉलेजकी डिग्रियोमे भी वह तुमसे वडे है। तेरह आनेके लिए रोज़ उनका तुम्हारे घर आना कोई अच्छी वात नही है। कोई तेरह रुपये रोजके लिए कही जाता है, तो कोई तेरह आनेके लिए, और कोई तेरह पैसेके लिए। उन्हें अपने घर ट्यूशन देकर अगर तुमने एहसान किया भी है, तो उनपर नही वल्कि मुझपर किया है—यह भूलना नही।

तुम अभी विलकुल वच्ची हो सरोज, तुम्हें आदमीकी नही, सिर्फ कपडोकी पहचान है। तुम्हारे हृदयमें अवतक कुछ भावुकता और गम्भीरता आ गयी होती, तो अच्छा था। लेकिन अठारह सालकी उम्र तक वहुत-सी युवतियाँ निरी वच्ची रहती है।

नलिनी तुमसे वहुत अच्छी है। उसके लिए सिलसिले चल तो रहे है, देखें कव तक क्या होता है। कुछ खवर मिले तो मुझे फौरन लिखना।

तुम्हारा व्यायाम चल रहा है या शुरू ही नही किया ? इस उम्रकी अपनी शारीरिक गठनकी कदर करना। यह विला सम्हाले टिकनेवाली चीज़ नही है। विना उचित व्यायामके मैंने तुमसे भी अधिक स्वस्थ लडकियोको दो ही वरसके भीतर ढलते देखा है।

६–८–१९५५]

सदैव तुम्हारी
सुभद्रा

०

प्रिय सुभद्रा,

पत्र मिला। तुम मुझसे कितनी वडी हो ? तीन ही साल न ! लेकिन तुम मुझे इस तरह शिक्षा देना चाहती हो, जैसे वीस साल वडी हो। तुम्हारा गुरुआनीपन मुझे किसी-न-किसी रूपमे स्वीकार है। तुम मुझ पर नाराज़ हो, इसलिए कि मै प्रेम नही करती या मेरे हृदयमे प्रेम नही है। लेकिन यह वात ग़लत है। नरेन्द्रको तुम जानती हो ? तुमने उन्हे खूब अच्छी तरह पिछली वार मेरे घरपर देखा है और उनके साथ चाय

पी है। वही सतीश दादाके क्लास-फेलो! तुम्हारी रायमें क्या उनके अन्दर कोई अवगुण या कमी है? एक बात और भी तुम्हारे मनकी उनमें है वह घरके कोई अमीर नही हैं। उनके पिता सिर्फ़ ढाई सौ रुपये महीनेके एक हाई स्कूलमें टीचर हैं। वह अफसर दादाके पास मेरे घर आते हैं और, तुम्हारे शब्दोमें कहूँ तो, मेरे सुन्दर रूपके बन्धनमे बँध भी गये हैं। मेरा कुछ-कुछ इरादा होता है कि उनसे प्रेम करने लगूँ। क्यो श्रीमतीजी, यह कैसा रहेगा?

हमारी ही 'कॉनफिडेन्स काउन्सिल'मे इन दिनो एक महत्त्वपूर्ण समस्या पर वाद-विवाद चल रहा है! समस्या यह है कि विवाहकी दृष्टिसे प्रेम करना चाहिए या स्वतन्त्र भावसे। ऐसे प्रश्नोपर हम लोगोको स्वय विचार करना चाहिए। विवाहकी दृष्टिसे ही प्रेम किया जाये—जिससे विवाह न करना हो उससे प्रेम न किया जाये—यह बात मुझे बहुत लचर जान पडती है। दसवें दर्जेमें, मुझे अच्छी तरह याद है, तुम हमारे गर्ल्स एसोसिएशन-की बहुत अच्छी स्पीकर थी। मैं उन दिनो सातवे दर्जेमे थी। तुम इस प्रश्नपर भी बहुत अच्छी तरह बोल सकती हो, इसलिए मैं तुम्हारी राय माँगती हूँ। हमारे कॉलेजकी कॉनफिडेन्स काउन्सिल—यह लडकियोकी ही काउन्सिल है—तुम्हारी रायकी क़दर करेगी।

नागरजीको अभी वह जगह मिली नही है, पर मिलनेकी आशा है। वह अस्सी रुपये मासिकको जगह है।

११-८-१९५५]

तुम्हारी
सरोजिनी

पुनश्च :

मेरे 'शारीरिक गठन' की तुम विशेष चिन्ता न करो। बिना व्यायामके ही वह मेरे लिए एक मुसीबत बन रहा है।

—सरोज

●

प्रिय सरोजिनी,

तुम्हारा पिछला पत्र पाकर मुझे चिन्ता हो गयी है। नरेन्द्र बाबूको मैंने उनके पहले दर्शनमें ही बहुत कुछ समझ लिया है। उनके प्रेममें तुम गहरी पड चुकी हो, यह भी अव मेरी आँखोमें स्पष्ट है। लेकिन तुम वडी असावधानीके साथ इस राहपर वढ रही हो। मेरा प्रवलतम अनुरोध है कि तुम उनकी ओरसे अपना कदम पीछे हटा लो। मैं जानती हूँ कि मुझे यह वात इस तरह न कहनी चाहिए। पर मुझपर तुम्हारा जो स्नेह-ऋण है, वह मुझे ऐसा ही कहनेके लिए मजबूर करता है। नरेन्द्र वावूकी सवसे भयङ्कर वात यह है कि वह शराव पीते हैं। उस दिन मेरे-तुम्हारे सामने ही उन्होने यह वात स्वीकार की थी। इस आयुका सवसे वडा खतरा मैं शरावको ही मानती हूँ। यह मनुष्यको मनुष्य नही वनने देती। नरेन्द्र वावू वातें भी वहुत लम्वी-चौडी करते हैं। अपने स्वार्थके लिए वह तुम-जैसी कितनी ही लडकियोको अपने प्रेम-जालमें फँसा सकते है। वह विशेप सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट है। मै जानती हूँ, इसीने तुमपर उनका जादू डाला है। लेकिन विचार और सहृदयताकी उनमें वडी कमी है। सरोजिनी, तुम मुझे अपनी सहेली वनाये रखोगी और मुझसे कुछ छिपाओगी नही, तो मैं तुम्हें इस खन्दकमें सहज ही गिरने न दूँगी।

तुम्हारी इस कॉनफ़िडेन्स काउन्सिलमे कुछ समझदार विचारशील लड-कियाँ भी है या केवल रंगीनी-पसन्द तितलियाँ ही तितलियाँ? विवाहकी दृष्टिसे प्रेम और विना विवाहकी दृष्टिसे प्रेमसे तुम्हारा मतलव क्या है? यह एक वडा ही खतरनाक और लडकपनका प्रश्न है। प्रेमका मामला वहुत नाजुक है। क्या तुम इसका अन्तर समझती हो? मैं मानती हूँ कि प्रेम विवाहकी दृष्टिसे भी करना चाहिए और इससे वाहरकी दृष्टिसे भी। कुशल इसीमें है कि तुम-जैसी लडकियाँ पहले किसीसे विवाहकी दृष्टिसे ही प्रेम करना सीखें जिससे विवाह कर सकती हो, उसीसे प्रेम करें। यथोचित प्रशसा और सहानुभूतिकी दृष्टिसे वे सभीको देखें, रूप और

गुणकी कदर भी अपने मनमे जगाये। जब वे प्रत्येक ऐसे आकर्षक युवकको, जिससे उनके विवाहकी सम्भावना या औचित्य न हो, देखकर कह सकें "यह सुन्दर है, लेकिन इसके रूप और पुरुषत्वका सम्पर्क किसी दूसरी लडकीका भाग है। उसके सम्पर्कमे आनेकी, उसकी कामना करनेकी मुझे आवश्यकता नही है। उसकी मित्रता, सहयोग और सौहार्द ही मेरे लिए काफी है।" तभी उनका स्वतन्त्र रूपसे, विवाहकी दृष्टिके बिना, किसीसे भी प्रेम करना उचित, बल्कि आवश्यक भी है।

तुम्हारी परिस्थिति गम्भीर हो गयी है सरोज, लडकपन मत करो। प्रेम करनेका तुम्हें पूरा अधिकार है, पर उसके रसको अपने अगले दिनोंके लिए कडवा मत बनाओ। तुम्हारे विचारोको जाननेकी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करूँगी।

१४-८-१९५५]

तुम्हारी
सुभद्रा

●

प्रिय सरोजिनी,

अपने १४ तारीखके पत्रके उत्तरकी दस दिनतक प्रतीक्षा करके आज फिर लिख रही हूँ। मेरी बाते तुम्हे बुरी लगी होगी, उन्हे तुमने अपनी राहका रोडा समझा होगा। लेकिन क्या तुम्हे मेरे स्नेह और मेरी हित-चिन्तामें विश्वास नही है? जो कुछ मैं कहती हूँ, उसपर गम्भीर भावसे तुम्हें विचार करना चाहिए और अपनी दलील या मनका भार मेरे सामने रखना चाहिए। मैं कभी यह नही चाहूँगी कि तुम मेरी किसी बातको बिना ठीक समझे केवल मेरे कहनेसे मान लो। राय मेरी भी गलत हो सकती है। तुम्हारी परिस्थितिको जाननेके लिए उत्सुक हूँ। तुम्हारी चिन्ता ने नलिनीकी बातको मेरे मनमें पीछे डाल दिया है। लौटती डाकसे उत्तर देना।

२४-८-१९५५]

तुम्हारी
सुभद्रा

●

प्रिय सुभद्रा,

तुम्हारे दोनो पत्र मिले थे। अस्वस्थताके कारण उत्तर देनेमे देरी हुई, क्षमा करना। तुमने तो मेरी बातको बतगड़ बना दिया है। असलमे बात कुछ भी नही है। नागरजीको लाइब्रेरियनकी जगह हमारे कॉलेजमे मिल गयी है। शेष कुशल है।

तुम्हारी
सरोजिनी

१-६-१९५५]

●

प्रिय सरोजिनी,

पत्र मिला। न जाने क्यो, तुम्हारे पिछले पत्रपर मुझे विश्वास नही हो रहा है। फिर भी अगर तुम अपने-आपको मुझसे छिपाना ही चाहती हो, तो मै कर ही क्या सकती हूँ? अपना जिम्मेदार हर व्यक्ति स्वय ही होता है।

नलिनीका मामला सुलझ रहा है। उमेश बाबूके पिता इस विवाहके लिए सहमत है और दोनो पक्षोके एक प्रभावशाली मित्रने नलिनीके पिताके सामने यह प्रस्ताव रख भी दिया है। नलिनीके माँ-बाप विचार कर रहे है। नलिनीको यह शुभ-सवाद सुना देना, यद्यपि वह पहलेसे ही सुन चुकी होगी। उसकी चिट्ठियाँ सुरक्षित रूपमे उसके हाथ पहुँच सकती होती, तो मै आज उसे ही पत्र लिखती।

अपनी जो भी बाते लिख सको, लिखना।

सदैव तुम्हारी
सुभद्रा

४-६-१९५५]

●

प्रिय सरोजिनी,

तुमने अब पत्रोत्तर न देनेका ढग अपनाया है। खैर, तुम्हारी इच्छाकी स्वतन्त्रतामे दखल देनेवाली मै कौन हूँ? नलिनीका विवाह उमेश बाबूसे

तय हो गया है, तुम पहले ही सुन चुकी होगी। नलिनीसे कहना, मैं उससे कृतघ्नताकी आशा नहीं करती हूँ। उसके दूल्हेमें एक-तिहाया साझा—अगर वह इसका मतलब समझ सके—हम लोगोंका रहेगा।

और कुछ नहीं तो घरके साधारण कुशल समाचार तो कभी-कभी लिख दिया करो।

१८–६–१९५५]

तुम्हारी
सुभद्रा

●

प्रिय सुभद्रा,

पढ़ाईमें आजकल इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि तुम्हारे लावडलोट पत्रोंका उत्तर देना मेरे लिए कठिन है। मैंने निश्चय किया है कि कामकी बात कहनेके लिए ही चिट्ठी लिखा करूँगी। नलिनीका विवाह अगली जनवरीमें होना निश्चित हो गया है। बेचारी तुम्हारा बड़ा एहसान मानती है। यथा समय तुम दोनोंके लिए निमन्त्रण पहुँचेगा।

२६–६–१९५५]

तुम्हारी
सरोजिनी

●

प्रिय सुभद्रा,

तीन महीने बाद तुम्हें पत्र लिख रही हूँ। तुमने भी इस बीच कुछ नहीं लिखा। लेकिन उसका कारण भी मैं हूँ। आज अपने कालेजकी प्रिंसिपल रविशरण धावनकी लड़की वनलताके साथ तुम्हारे नागरजीके विवाहोत्सवसे लौटकर यह पत्र लिखने बैठी हूँ। वनलता मेरी क्लास-फेलो है। इस कालिजमें लड़कियोंकी संख्या बहत्तर है और वनलता उनमें सबसे अधिक सुन्दर है। प्रिंसिपल धावनके पिता एक बहुत बड़े व्यवसायी थे और वे इतनी सम्पत्ति छोड़ गये हैं कि प्रिंसिपल धावनकी गिनती आज भी बड़े रईसोंमें है। वनलताके साथ नागरजीका विवाह आमतौरपर

लोगोंके लिए एक आश्चर्य-चर्चाका विषय बन गया है। लेकिन इसकी कथा आश्चर्यजनक होते हुए भी स्पष्ट है। वनलता लाइब्रेरियन नागरके प्रेममें कब जा पड़ी, यह हम लोग नहीं देख सके। उनकी प्रेम-लगनका अनुमान हमें विवाहके तीन सप्ताह पहले लग पाया। ये तीन सप्ताह लड़कियोंके लिए विशेष दिलचस्पीके रहे। नागरजीके प्रति वनलताके आकर्षणने लड़कियोंका ध्यान उनकी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट किया और कुछ लड़कियाँ तो सचमुच उनपर रीझ भी गयीं।

कहानी लम्बी और भीतर-ही-भीतर काफी गहरी है। मेरा चित्त इस समय इतना स्वस्थ नहीं है कि उस कथाका इस पत्रमें वर्णन कर सकूँ। इतना ही काफी है कि उस कथाका अन्त उन दोनों प्रेमियोंके विवाहमें ही हुआ।

विवाह पुरानी सनातन धर्मकी रीतिसे हुआ। वनलताका विशेष आग्रह था और लड़कियाँ जबरदस्ती मुझे खींचकर ले गयी थीं, वरना इस विवाहोत्सवमें जानेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं थी। जिस समय सब लड़कियाँ और घरोंकी स्त्रियाँ वरके पलँगको घेरकर बैठी अपनी-अपनी भेंट उन्हें दे रही थीं, मुझे भी अपना कर्तव्य पूरा करना पड़ा। विवाहकी भेंट लेकर जब मैं अपनी बारीपर नागरजीके पास पहुँची, तब मेरी भेंट लेनेसे पहले ही उन्होंने अपने गलेकी फूल-माला उतारकर मेरे गलेमें डाल दी और कहा—'हमारा प्रेम चलेगा।'

सब लड़कियाँ देखती रह गयीं। खैर, उस अवसरके लिए यह एक साधारण बात थी। लेकिन मैं इसे साधारण नहीं मान रही हूँ। तुमसे अपना कोई भी मनोभाव छिपानेकी इच्छा नहीं है। नागरजीकी उस समयकी वह मुसकान, उनके वे शब्द और उनका वह कार्य रह-रहकर मेरी आँखोंके सामने घूम उठता है। मैं उनका अर्थ खोजनेमें खोयी जा रही हूँ। यह मत समझना कि मैं उनके लिए दीवानी हो उठी हूँ। बात बिल्कुल उलटी ही है। उस फूल-मालाके स्पर्शसे मेरी सारी गर्दन, सारा

सीना सुलग उठा था। उसकी तपन अभी तक मेरे शरीरको जला रही है। उनके उस व्यवहारमे कितना उपहास, कितना तिरस्कार, कितना अपमान भरा हुआ था, मै सोच रही हूँ। यह सोचते हुए भी मै अभी देखकर आयी हूँ कि उनमे रूप और सौन्दर्य विशेष है और मोहित करनेकी कला भी उन्हे आती है। उनके भीतर इन चीजोका निखार मै पिछले कुछ दिनोसे देख रही हूँ और इस निखारका कारण वनलताको भी बहुत कुछ मान सकती हूँ। अपने मनोभावोको मै स्वय नही समझ पा रही हू। इतना निश्चित है कि मै इस समय अस्वस्थ हूँ।

सुभद्रा, पिछले दिनो तुम्हारे स्नेह और हितचिन्ताकी उपेक्षा, बल्कि उनपर सन्देहका पाप मैने किया है। तुम ही मुझे उससे मुक्त कर सकती हो। नरेन्द्रके जालमे मै सचमुच गहरी फँसकर ही उभरी हूँ। अपना बहुत कुछ खो भी चुकी हूँ। प्रेमकी गहराई तो दूर, उसमे विश्वासकी पात्रता भी नही है। ये सब लिखनेकी बाते नही है। दस-पन्द्रह दिनमे तो तुम यहाँ आओगी ही, नलिनीके विवाहमे, तभी सब कहूँगी। प्रेम और विवाहके नामसे अब मुझे घृणा हो गयी है। मै अब जीवनमे न किसीसे प्रेम करना चाहती हूँ, न विवाह। मै क्या चाहती हू, मै नही कह सकती। तुम्हारे आने तक शायद कुछ सोचने-कहनेके लिए स्वस्थ हो सकू। पत्र लिखना।

२४-१२-१६५५]

तुम्हारी
सरोजिनी

एक बात लिखना भूल ही गयी। डेढ महीना हुआ, नागरजीने रागिनीका पढाना बन्द कर दिया गया था। नागरजीके प्रति मेरा अनादर ही इसका मूल कारण था। अनेक बातोके लिए दुखी और लज्जित हूँ।

—सरोज

प्रिय सरोजिनी,

पत्र मिला। पहली जनवरीको हम लोग कानपुर आ रहे हैं। तुम्हारे पिछले पत्रमें तुम्हारी स्वस्थता और लौटती हुई सुन्दरताका पूरा लक्षण है। चिन्ता न करना, धीरज रखना। नागरजीपर सन्देहकी सब बातें निर्मूल हैं। उनके 'एक तिहाई' प्रेमपर निस्सन्देह तुम्हारा विशेष साझा रहेगा। प्रत्येक पुरुष और स्त्रीका एक तिहाई प्रेम पति या पत्नीके रूपमें, एक तिहाई भाई या बहिनके रूपमें और एक तिहाई मित्रके रूपमें होता है। यह मेरी नयी फिलासफी है। मिलनेपर खूब बातें होंगी। सब्र करो, तुम्हारे साथ प्रेमका सौदा करनेवाले बहुत मिलेंगे। रूपकी पहचान तुम्हें जरा देरसे आयी है।

२७-१२-१९५५

तुम्हारी
सुभद्रा

सोना सुलग उठा था। उसकी तपन अभी तक मेरे शरीरको जला रही है। उनके उस व्यवहारमे कितना उपहास, कितना तिरस्कार, कितना अपमान भरा हुआ था, मै सोच रही हूं। यह सोचते हुए भी मै अभी देखकर आयी हूं कि उनमे रूप और सौन्दर्य विशेष है और मोहित करनेकी कला भी उन्हे आती है। उनके भीतर इन चीजोका निखार मै पिछले कुछ दिनोमे देख रही हूं और इस निखारका कारण वनलताको भी बहुत कुछ मान सकती हूं। अपने मनोभावोका मै स्वय नही समझ पा रही हूं। इतना निश्चित है कि मै इस समय अस्वस्थ हूं।

सुभद्रा, पिछले दिनो तुम्हारे स्नेह और हितचिन्ताकी उपेक्षा, बल्कि उनपर सन्देहका पाप मैने किया है। तुम ही मुझे उससे मुक्त कर सकती हो। नरेन्द्रके जालमे मै सचमुच गहरी फँसकर हो उभरी हूं। अपना बहुत कुछ खो भी चुकी हूं। प्रेमकी गहराई तो दूर, उसमें विश्वासकी पात्रता भी नही है। ये सब लिखनेकी बाते नही है। दस-पन्द्रह दिनमें तो तुम यहां आओगी ही, नलिनीके विवाहमें, तभी सब कहूंगी। प्रेम और विवाहके नामसे अब मुझे घृणा हो गयी है। मै अब जीवनमें न किसीसे प्रेम करना चाहती हूं, न विवाह। मैं क्या चाहती हू, मैं नही कह सकती। तुम्हारे आने तक शायद कुछ सोचने-कहनेके लिए स्वस्थ हो सकूं। पत्र लिखना।

२४-१२-१९५५]

तुम्हारी
सरोजिनी

एक बात लिखना भूल ही गयी। डेढ महीना हुआ, नागरजीसे रागिनीका पढाना बन्द कर दिया गया था। नागरजीके प्रति मेरा असन्तोष ही इसका मूल कारण था। अनेक बातोके लिए दुखी और लज्जित हूं।

—सरोज

प्रिय सरोजिनी,

पत्र मिला। पहली जनवरीको हम लोग कानपुर आ रहे हैं। तुम्हारे पिछले पत्रमें तुम्हारी स्वस्थता और लौटती हुई सुन्दरताका पूरा लक्षण है। चिन्ता न करना, धीरज रखना। नागरजीपर सन्देहकी सब बातें निर्मूल हैं। उनके 'एक तिहाई' प्रेमपर निस्सन्देह तुम्हारा विशेष साझा रहेगा। प्रत्येक पुरुष और स्त्रीका एक तिहाई प्रेम पति या पत्नीके रूपमें, एक तिहाई भाई या बहिनके रूपमें और एक तिहाई मित्रके रूपमें होता है। यह मेरी नयी फिलासफी है। मिलनेपर खूब बातें होंगी। सब्र करो, तुम्हारे साथ प्रेमका सौदा करनेवाले बहुत मिलेंगे। रूपकी पहचान तुम्हें जरा देरसे आयी है।

२८-१२-१९५५

तुम्हारी
सुभद्रा

प्रिय महोदया,

'स्रोतस्विनी'में आपकी कहानी 'संकेत' देखी। आपकी सहृदयतामे एक विशेष मौलिकता मुझे दीख पडती है। आपकी कुछ और भी रचनाएँ देखनेकी इच्छा मेरे मनमे जाग उठी है। क्या आप अपनी कुछ प्रकाशित रचनाओंकी कटिंग भेज सकती हैं? या जिन पत्र-पत्रिकाओमे आपकी चीजें छपी हो, उनका हवाला दे सकती है? 'अन्तर्दर्शी' नामसे मै समालोचनाएँ लिखता हूँ, आपने सम्भवत कुछ पत्रोमे देखी होगी।

भवदीय

३०-५-१९५०] अमलकुमार शर्मा

•

प्रिय महोदय,

कृपा-पत्र मिला। अत्यन्त आभारी हूँ। अपनी अब तककी प्रकाशित कहानियोकी फाइल अलग रजिस्टर्ड बुक-पोस्टसे भेज रही हूँ। अभी तक ये ग्यारह कहानियाँ ही मेरी छपी हैं। इसी सालसे पत्रोमे लिखना प्रारम्भ किया है। आपकी समालोचनाएँ मैने 'वसुधा' और 'आलोक'मे देखी है। मेरी उस कहानीने आपका ध्यान आकृष्ट किया, यह मेरा अहोभाग्य है।

भवदीया

२-६-१९५०] शुभचन्द्रिका

•

प्रिय महोदया,

कहानी-संग्रह मिला। उसमेसे पहली कहानी 'पत्थरके आँसू' पढ गया हूँ। आपकी नवीनता आश्चर्यजनक है। सभी कहानियाँ देखूँगा। दो

सप्ताहके भीतर सभी कहानियाँ पढ़कर लौटा दूंगा, तभी और भी कुछ लिखूंगा।

भवदीय
अमलकुमार शर्मा

६-६-१९५०]

•

प्रिय महोदया,

आपकी तीसरी कहानी 'सपनेका समाज' अभी समाप्त की है। उसने कुछ लिखनेके लिए विवश कर दिया है। उसमें आपने बड़ी अनधिकार चेष्टा की है। आपके कथा-नायक निरंजनने स्वल्प-परिचिता सरितासे जिस प्रकारके प्रश्न पूछे हैं, उन्हें आप अपने भारतीय समाजके लिए कहांतक स्वाभाविक और सह्य समझती हैं ? जिस पात्रका चित्रण आप इतने आदर-सम्मानके साथ करती आ रही हैं, उसके मुखसे कोई ऐसी बात कहलवानी, जो आपकी या आपके पाठक-समाजकी दृष्टिमें अशोभन या उच्छृङ्खल जान पड़े, क्या आपकी सहृदयताके विपरीत नहीं है ? क्या इस तरहके प्रश्न आप स्वयं किसी भले व्यक्तिसे अपने प्रति सुनना पसन्द कर सकती हैं ? निरंजन के पत्रका उत्तर देनेके पहले ही सरिताको उसके सम्पर्कसे सदाके लिए अलग करके आपने और भी गोलमाल कर दिया है। सरिताके हृदयमें उन प्रश्नोंकी प्रतिक्रियाको आपने क्यों छिपाना चाहा है ? ऐसे कैसे समाजकी कल्पना आपने इस कहानीमें की है—किसी अच्छे, आदर्श समाजकी ही न ? आपकी कहानियोंकी प्रवृत्ति व्यावहारिकता और उपयोगिताकी ओर विशेष है। उनमें निर्माणकी शक्ति है। मेरी राय है कि आप उनमें किसी ऐसी बातका समर्थन न होने दें, जो आदर्श व्यावहारिकताके विरुद्ध हो। क्या आप अपनी उस कहानीपर कुछ प्रकाश डाल सकती हैं ? उससे मुझे आपको कुछ अधिक समझनेमें सहायता मिलेगी।

भवदीय
अमलकुमार शर्मा

८-६-१९५०]

•

प्रिय महोदय,

कृपा-पत्र मिला। 'सपनेका समाज' कहानीमे मैंने अपने विचारानुसार एक आदर्श समाजकी ही कल्पना की है। मैं समझती हूँ कि सेक्स-भेदके कारण हमारे समाजमे स्त्री और पुरुषके बीच जितनी चौडी खाई है, उसे बहुत-कुछ सँकरा हो जाना चाहिए। इस भेद-भावके कारण समाजके दो बडे विभाग—पुरुष और स्त्री—एक-दूसरेसे बहुत दूर हैं। वे एक-दूसरेको बहुत कम जानते हैं। वे एक दूसरेको छिछले स्वार्थ या फिर सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं। एक परिवारकी स्त्रियोके लिए पुरुष-समाज जैसे उनके परिवारके बाहर होता ही नही। बाहरके किसी आदमीसे उनका कोई मतलब नही होता। इसी प्रकार पुरुषोके लिए भी उनके परिवारके बाहरके सम्पर्कमे आने योग्य स्त्रियाँ नही होती। परिवारके भीतर भी पति-पत्नीके बाहर शेष कुटुम्बी विपरीत सेक्सके घरवालोंसे बहुत-कुछ अपरिचित ही रहते है। पिता पुत्रीको, उसके ज्ञातव्य मनोभावोको, नही जानता, भाई बहनको नही जानता। मैं समझती हूँ कि यह उदासीनता विश्वास और सहानुभूतिमे बदलनी चाहिए। पिता और भाईको पुत्री और बहनका मित्र, विश्वासपात्र और सलाहकार भी होना चाहिए, उन्हें उनके स्वाभाविक मनोभावोका आदर करना चाहिए। ऐसा करते हुए भी स्त्री और पुरुषके बीच जितनी मनोभावनाके गुप्त रहनेमे सुन्दरता है, उसकी उसी प्रकार रक्षा की जा सकती है। परिवारके बाहर भी मित्रताके क्षेत्रमे स्त्रियों और पुरुषोका सह-मिलन बढना चाहिए। इसके बिना दोनो जातियो के लोग बहुत अधिक सेक्स-भावनासे ढँके हुए रह जायेंगे और इन दोनोको एक-दूसरेका यथेष्ट सहयोग नही मिल पायेगा।

जिस आदर्श समाजकी मैंने उस कहानीमें कल्पना की है, सरलता भी उसका एक जगा हुआ अग है। बहुत-सी साधारण बातें, जो अभी एक स्त्री एक पुरुषसे या पुरुष स्त्रीसे पूछनेमे झिझकता है, उनके पीछे उसका सन्देह, अविश्वास और प्राय सचमुच थोडी बहुत अनुचित कामना भी होती है।

इसीलिए जो बातें एक स्त्री स्त्रीसे या पुरुष पुरुषसे निस्संकोच, सहज भावसे पूछ सकता है, वह विपरीत सेक्सवालेसे नहीं। आयु, विवाहित-अविवाहित और अनदेखे मित्रके रूप-रंगके विषयमें प्रश्न, मैं नहीं समझती, क्यों बुरे प्रश्न हैं। निस्सन्देह ऐसे प्रश्नोंके पीछे ऐसी भावनाएँ भी अक्सर होती हैं, जो कुछ क्रमसे आगे चलकर प्रायः अनुचित और अहितकर दिशाओंमें बहका सकती हैं। वे अपमान, कटुता या पतनकी ओर ले जा सकती हैं। यथेष्ट शिक्षा और संस्कृतिका अभाव ही वैसी भावनाओंका कारण हमारे समाज में है। लेकिन ऐसी भावनाओं और प्रवृत्तियोंसे भयभीत होकर आगे बढ़ना समाजके लिए और भी घातक होगा। स्त्री और पुरुषके बीचकी यह दीवार तो कुछ नीची होनी ही चाहिए।

इतना लिख चुकनेपर निरंजन और सरिताके सम्बन्धमें मेरा कुछ कहना शेष नहीं रह जाता। सरिताको उत्तर देनेसे पहले मैंने उस कहानीसे हटा दिया है, इसलिए कि उस कहानीमें काफी बात कही जा चुकी थी और सरिताकी प्रतिक्रियाओंको मैं किसी दूसरी कहानीका विषय बनाना चाहती थी। तबतक पाठकोंको स्वयं ही कुछ सोचने या खीझनेके लिए छोड़ देना चाहती थी।

निरंजनने सरितासे जैसे प्रश्न पूछे हैं, वैसे प्रश्न निस्सन्देह कोई भी आदमी मुझसे मेरे या मेरी परिचित किसी भी स्त्रीके बारेमें पूछ सकता है। मैं कभी उनका बुरा नहीं मानूँगी, और यदि उस आदमीको मैं उतनी ही अच्छी तरह जानती हूँगी, जितनी अच्छी तरह अपनी कहानीके पात्र निरंजनको जानती हूँ, तो उस पूछनेवालेपर कोई सन्देह भी न करूँगी।

मेरी ओर आपकी जो कृपापूर्ण अभिरुचि है, उसके लिए बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

१२-६-१९५०]

भवदीया
शुभचन्द्रिका

प्रिय महोदया,

पत्र मिला। पढ़कर मैंने अपनी कल्पित आपकी आयुमें दस वर्ष और बढ़ा लिये हैं और ऐसा करते हुए मुझे प्रसन्नता ही अधिक हुई है। आपने अपने समीप आनेके लिए बहुत-कुछ स्वतन्त्र कर दिया है। आपकी आयु, मुझे रूप-रंग और विवाहित-अविवाहितके प्रश्न ही स्वभावतया मेरे भी पहले प्रश्न थे, जिन्हें पूछनेका साहस मैं आपका पिछला-जैसा पत्र पानेसे पहले नहीं कर सकता था। मैंने आपको सोलह और बीस वर्षके बीचकी एक नवयुवती समझा था, अब छब्बीस और तीसके बीच रख रहा हूँ। मेरा अनुमान है कि सुन्दर आप होंगी, लेकिन विशेष नहीं। इन दोनों प्रश्नोंपर अपने अनुमान इसलिए लिख रहा हूँ कि अभी इनके उत्तर आपसे माँगना नहीं चाहता। इतना अवश्य सूचित करें कि आप विवाहित हैं या नहीं? यह जानकारी मेरी सुविधाके लिए आवश्यक है।

हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें आपको पाकर मुझे अनिर्वचनीय प्रसन्नता हुई है। आप-जैसी भाव-भेदी एवं स्पष्टवादी लेखिकाओं-लेखकोंका अभाव मुझे बहुत खटक रहा था। नये समाजके निर्माणके लिए ऐसे विचारशील साहित्यकारोंकी हिन्दीको बहुत बड़ी आवश्यकता है। अपने विचारोंके प्रकाशनके लिए आपने कथाका माध्यम चुनकर बहुत अच्छा किया है। यह प्रचारका सबसे अधिक व्यापक माध्यम है। फिर भी कुछ विवेचनात्मक लेख आपको लिखने ही चाहिए।

आपकी शैली एक सिद्धहस्त अनुभवी लेखिकाकी शैली है। आपने इन ग्यारह कहानियोंके पहले भी जो-कुछ लिखा हो, उसे भी मैं देखना चाहता हूँ। लेखनी-द्वारा आप समाजकी बहुत बड़ी सेवा कर सकती हैं। यदि आप अपनी लेखन-कलासे भी ऊपर लोक-सुधारकी दृष्टिसे कर रही होंगी, तो मैं समझता हूँ, अधिक अच्छा है।

अपने पिछले पत्रमें मैंने आपपर जो आक्षेप-सा किया था, वह वास्तवमें आक्षेप नहीं, आपको कुछ विशेष कहनेके लिए मेरा निमन्त्रण ही था।

मै आपके विचारोंसे बहुत-कुछ सहमत हूँ। पुरुष-समाजमें अपने लिए जिस प्रकारके मित्रोंकी आप कल्पना कर सकती है, वैसा ही मित्र आप मुझे मानें।

[१५-६-१९५०]

आपका
अमलकुमार शर्मा

●

प्रिय शर्माजी,

आपके आदेशानुसार आपको अपना मित्र मान चुकी हूँ, इसीलिए पत्रके सम्बोधनमे आवश्यक परिवर्तन कर रही हूँ। आशा रखती हूँ, आप भी आगे मुझे मेरे नामसे ही पुकारना पसन्द करेंगे। मैं विवाहित हूँ। आयु और रूप-रगके सम्बन्धमे आपने मना न किया होता, तो मैं वह भी आपको लिखती और इसी पत्रके साथ अपना एक फोटो भी भेजती। तत्सम्बन्धी आपके अनुमान लगभग ठीक ही है।

आपके-मेरे पत्र-व्यवहारमे पहले आदान-प्रदानके बाद यदि हमारे एक-दूसरेके प्रेममे आ पड़नेका थोड़ा-बहुत भय रहा भी होगा, तो अब वह नही रह गया है। हमारी मित्रता निभ सकती है और हम एक-दूसरेके सहयोगसे बड़ा काम कर सकते हैं। लिखनेकी रुचि ही नही, अभ्यास भी मुझे अपने शिक्षा-कालसे है। मैंने लिखा भी बहुत है, पर प्रकाशनके क्षेत्रमे इन कहानियोको लेकर ही आयी हूँ। जो-कुछ मैंने लिखा है, वह मेरी कापियोंमें है और उसमेंसे बहुत-कुछ उपयोगी भी है। फिर भी उसे प्रकाशित कराना मैं ठीक नही समझती, क्योंकि उसकी नीवपर अब जो-कुछ मैं लिखूँगी, वह अधिक अच्छा होगा और प्रकाशनके लिए यथेष्ट भी होगा। उसे देखनेके बदले यदि आप मेरी अगली रचनाओंको ही देखनेका समय निकालते रहेंगे, तो वह भी बहुत होगा। आपका सहयोग मेरे लिए बहुमूल्य है। बिना उचित परिचय और आलोचनाके लेखककी गति धीमी रहती है, हिन्दी-साहित्यमे तो अभी बहुत ही धीमी। अगले

पत्रमे आप अपना भी वैसा परिचय देना न भूलें, जैसा मेरा आप चाहते थे। आपके लिए ही नही, मेरे लिए भी वे प्रश्न स्वाभाविक हैं।

१७–६–१९५०]

आपकी
शुभ

●

प्रिय शुभचन्द्रिकाजी,

अपने और मेरे बीच आपको वैसे प्रेमका भय नही है, पर मैं इस सम्बन्धमे उतना निश्चिन्त नही हूँ। आपकी स्पष्टवादिता और आवरणहीन भावुकताने और आप विवाहित है, इस जानकारीने मुझे आपके प्रति उस रूपमें आकृष्ट होनेसे रोक लिया है। फिर भी मैं उतना 'अभावुक' नही हूँ। इसका यह भी अर्थ नही कि मैं आपकी निर्भयता या निश्चिन्ततामें कोई विघ्न डालना चाहता हूँ। आपके सम्बन्धमें अपनी भावनाओसे ऊपर आपकी भावनाओंकी कदर करना मै अपना पवित्र कर्तव्य मानता हूँ।

आपकी रचनाओकी मैं पत्रोमे भरपूर समालोचना करूँगा। वे है ही इस योग्य। आज आपके सग्रहकी अन्तिम कहानी भी पढ ली है। हिन्दी-पाठी जगत् उनकी पूरी क़दर कर सकेगा, इसमें मुझे सन्देह है। वास्तवमें वे उसके सामान्य स्तरसे ऊपरकी चीजें हैं। मेरी दृष्टिमे उनमे कलात्मकता, रसमयता और सार्थकता भरपूर है। आपकी कहानियोपर अपना पहला लेख तैयार करके 'स्रोतस्विनी'मे ही एक सप्ताहके भीतर भेज रहा हूँ। आपकी कहानियाँ रजिस्ट्रीसे लौटा रहा हूँ। आपके पतिदेव, मैं समझता हूँ, बहुत सहृदय, उदार और समझदार पुरुष होगे। उनका भी कुछ परिचय भेजिएगा।

२०–६–१९५०]

आपका
अमल

पुनश्च—

और हाँ, मेरी आयु पैंतीस वर्षकी है। मैं अविवाहित हूँ। अगले पत्रके साथ अपना फोटो अवश्य भेजिए। क्या खूब! अगर मेरे हस्ताक्षरके नीचेके केवल दो वाक्योंपर ही किसीकी दृष्टि पड़े, तो वह उनका क्या अर्थ निकालेगा?—अ०

●

प्रिय अमलकुमारजी,

अपने मेरे नातेके सम्बन्धमें आपका उतना निश्चिन्त न होना अनुचित या अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन यह निश्चिन्तता यदि एक ओरसे भी हो, तो भी काफी है। उस प्रकारके प्रेमकी एक उम्र होती है, एक अवसर-विशेष होता है। वैसी उम्र और अवसरके बाद भी अक्सर लोग वैसे प्रेममें उलझते चलते हैं, लेकिन इसका कारण अधिकांशमें उनकी मानसिक परदेदारी, घुटन और अतृप्ति ही होती है। कभी-कभी उनकी मूर्खता और छिछलापन भी इसका कारण होता है। वैसे प्रेमका मेरा अवसर फलीभूत होकर बीत चुका है। अब न मुझे उसकी चाह है, न भय। अब तो ढूँढनेसे भी मुझे कोई ऐसा पुरुष नहीं मिलता, जो मुझपर मुग्ध होनेके लिए तैयार हो, या कमसे-कम मैं ही उसपर मुग्ध हो सकूँ। मुझे पहली बार देखकर यदि कोई मुझपर मुग्ध होता भी है, तो थोड़ेसे परिचयके बाद ही उसका टिकना कठिन हो जाता है और वह मुझे स्त्रीत्वहीन समझकर छोड़ देता है।

मैं जानती हूँ कि स्त्रीकी सलज्जतामें, उसके मन और शरीरके दुरावमें, उसकी यौन-तृष्णामें एक ऊँचा रस और सुन्दर आकर्षण है, लेकिन यह मानव-प्रेमका एक प्रारम्भिक अंश-मात्र है। भीतरसे प्रत्येक मनुष्य न पुरुष है, न स्त्री—बल्कि अधिक ठीक यह कहना होगा कि प्रत्येक मनुष्य पुरुष भी है और स्त्री भी। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य हर दूसरे मनुष्यको आकृष्ट कर सकता है—उसके पुरुष-अंगको अपने स्त्री-

अंगमें और उसके स्त्री-अंगको अपने पुरुष-अंगमें। मनुष्य ज्यों-ज्यों पूर्णता प्राप्त करता जायेगा, उसके ये दोनों अंग पुष्ट होते जायेंगे। हमारे समाजके व्यक्ति अभी अपने शरीरकी सीमाओंमें बहुत जकड़े हुए हैं। ये सीमाएँ ढीली होनी चाहिए। स्त्री-पुरुषोंको अपने शारीरिक सेक्ससे ऊपर उठकर भी एक दूसरेसे मिलना चाहिए। योनिभेद जनित मुग्धतासे ऊपरके प्रेमको मित्रता कह सकते हैं। मित्रताका रस यौन-मुग्धतासे अधिक मीठा, व्यापक और कल्याणकारी है। इसे ही मैं मानव-समाजका अभीष्ट मानती हूँ। यौन-आकर्षणकी सुन्दरताओंको बनाये रखते हुए भी स्त्री-पुरुषोंके बीच यह मित्रताका नाता जगाया जा सकता है। अपने-अपने सेक्सके भीतर रहकर मित्रता कभी नहीं पनप सकती। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि मैं दोनों सेक्सोंके बीचके परदेको बहुत-कुछ हटा देना कितना आवश्यक समझती हूँ। मेरी रचनाओंका उद्देश्य भी स्वभावतया यही है। इन दोनोंके बीच इतनी अधिक 'यौन-मानसिकता' का कारण मैं इस अनर्थकारी परदेदारीको ही मानती हूँ।

मेरे पतिदेव श्री राममोहन पारीख यहाँके एक प्रतिष्ठित नागरिक और व्यवसायी हैं। वे म्यूनिसिपल कमेटीके सदस्य और कई साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओंके पदाधिकारी हैं। उनकी सहृदयता, उदारता और समझदारी निर्विवाद हैं। आपके सभी पत्र मैंने उन्हें दिखाये हैं। उन्हें पढ़कर आपमें उनकी रुचि विशेष जाग उठी है और उनका अनुमान है कि शीघ्र ही आपकी-उनकी भेंट होगी। अपना और उनका दो नये चित्र इस पत्रके साथ भेज रही हूँ।

२३–६–१९५०]

आपकी
शुभ

पुनश्च—

पारीखजी कह रहे हैं कि मैं आप तक उनका प्रणाम और यहाँ

आनेका सानुरोध निमन्त्रण पहुँचा दूँ। अपनी ओरसे भी मैं इस अनुरोधका समर्थन करती हूँ।—शुभ

•

प्रिय शुभचन्द्रिकाजी,

पारिख-दम्पतिके निमन्त्रणका शीघ्रसे-शीघ्र लाभ उठाकर आपके पास पहुँचनेकी व्यवस्था कर रहा हूँ। ८ जुलाइ तक यहाँसे छुट्टी पाकर शीघ्र ही आऊँगा। यथासमय लिखूँगा

आपका फोटो मिला। मैं कल्पना नहीं कर सकता था कि आप इतनी अधिक सुन्दर है। इतना सुन्दर रूप मैंने आज तक नहीं देखा था, सच कहता हूँ। मेरे इस वक्तव्यको ठीक माननेमें आपको कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इस चित्रको देखकर मैं सचमुच आपपर मुग्ध हो जाता, यदि मेरे-आपके बीच इतना इस प्रकारका पत्र-व्यवहार न हो चुका होता। अब मैं समझ सकता हूँ कि आपसे यथेष्ट परिचयके बाद कोई आपपर मुग्ध क्या नहीं रह सकता। अपने भीतरके पुरुषका (आप मानती हैं कि हर पुरुषके भीतर स्त्रीत्व और हर स्त्रीके भीतर पुरुषत्व भी होता है) एक मजबूत-सा 'शेक हैण्ड'—झकझोरा—देकर आप उसका रुख आसानीसे पलट देती है। आपकी भावुकतापर अंकुश रखनेवाली प्रौढ़ विचारशीलताने—उसे ही मैं आपका पुरुषत्व कह सकता हूँ—मेरे मनपर भी भारी प्रभाव डाला है, मैं देख रहा हूँ। आपका यह पुरुषत्व मुझे एक तरहसे बहुत अखरा भी है। आपके साथ मित्रताकी सम्भावनाएँ उस कमीको पूरा करके कुछ अधिक ही दे जायेगी, यह भी मेरा विश्वास है। देखना है, अपने आकर्षक स्त्रीत्वको आप अपनी मित्रताओंमें किस तरह निभाती है।

मुझे सन्तोष है कि आप-जैसी रूप-गुणवती पत्नी पानेके लिए मुझे श्री पारिखसे कोई ईर्ष्या नहीं है। अब मैं सम्भवतः प्रत्येक सुन्दर युवतीको देखकर कह सकूँगा 'कितनी सुन्दर!' इसके सुखद सौन्दर्यके पूर्ण आलिङ्गनके भागीदारके लिए ही इसका रूप सुरक्षित, अछूता रहना

चाहिए। इसके और इसके जीवन-सहचरके प्रति मेरी सभी शुभकामनाएँ हैं। यह रूप और इसके भीतरकी आत्मा खूब फले-फूले।" ऐसा कह सकना सचमुच मेरी एक नयी प्रज्ञा है, जो सम्भवतः आपके विचारोंने ही मुझमें जगायी है। आपका मैं बहुत ऋणी हूँ।

आपकी आयु पच्चीससे तो किसी तरह अधिक नहीं जान पड़ती। रूप और स्वास्थ्यके लिए मेरी बधाई आप स्वीकार करेंगी। श्री पारीखको मेरा स्नेहपूर्ण प्रणाम कहिए। उनसे भी मिलनेकी उत्कण्ठा मुझे है।

२७-६-१९५०]

आपका
अमल

●

प्रिय अमलकुमारजी,

८ जुलाई बीतनेकी हम लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपने नारी-सौन्दर्यके लिए जो नया दृष्टिकोण प्राप्त किया है, वह एक बहुत ऊँचा दृष्टिकोण है। लेकिन उसका श्रेय मैं अपनी विचार-धाराको नहीं दे सकती। वह तो आपकी सहृदय महत्तामें रखी हुई एक क्षमता थी। प्रेम, सौन्दर्य और उनके उपयोग-दुरुपयोगपर मैं कहानियों-द्वारा यथाशक्ति प्रकाश डालना चाहती हूँ। आप उनकी विवेचना लेखोंमें बहुत सुन्दर कर सकते हैं। मैं देख रही हूँ, यह विषय मेरा ही नहीं, आपका भी सहज-प्रिय विषय है। साहित्य-क्षेत्रमें आपको अपना मित्र पाकर मैं बहुत कृतार्थ हुई हूँ।

मेरी आयु पच्चीसके भीतर नहीं, पूरे अड़तीस वर्षकी है, आपसे तीन वर्ष अधिक। फिर भी स्वास्थ्यकी दृष्टिसे लोग मुझे पच्चीससे अधिक नहीं आँक पाते। सौन्दर्यकी रक्षा और उसके प्रसाधनोंसे मुझे प्रेम है। आपको और आपके पहले आपके पत्रकी प्रतीक्षा है।

२-७-१९५०]

आपकी
शुभ

× × ×

मेरे परम मित्र, हिन्दीके प्रसिद्ध समालोचक श्री अमलकुमार शर्मा 'अन्तदर्शी'ने ऊपर लिखा पत्र-व्यवहार मुझे दिखानेकी कृपा की थी। जब मैं इसे पढ चुका, तब उन्होने मुझसे पूछा, 'क्या आप शुभचन्द्रिकाजीके सम्पर्कमे आना पसन्द करेगे ? आप उन्हे अपनी ओर अपने-आपको उनकी मित्रताके योग्य कहाँतक समझते है ?'

मित्रके इन प्रश्नोको मैं पाठकोको समर्पित करना चाहता हूँ !

मालिक चाहिए

पिछले सप्ताहकी डाकमें मुझे एक बडा-सा लिफाफा मिला है। उस लिफाफेमे पत्र-प्रेषक महोदयका कुछ मनोरजक पत्र-व्यवहार तथा उसके साथ मेरे नाम एक पत्र भी है। पत्र यह है

प्रियवर,

इस पत्रके साथ कुछ महत्त्वपूर्ण कागज भेज रहा हूँ। अपनी कथा ये आप ही कहेंगे। इनसे आप देखेंगे कि मैं अपनी एक कितनी सार्थक खोजमें अभी तक असफल हूँ। आप लेखक है और आपकी शैली एव विचारधारा मुझे अपनी प्रकृतिके बहुत कुछ अनुकूल जान पडी है। इसीलिए ये पत्र आप के पास भेजते हुए मेरा अनुरोध है कि इनका यथोचित उपयोग आप अपने किसी लेखमे करें। मैं समझता हूँ कि आपके उस लेख-द्वारा मुझे अपने अभीष्टकी खोजमे भी कुछ सहायता मिल सकती है। हम लोगोंके नाम प्रकट न करें। आपका नाम बहुत पहलेसे ही मेरे हृदयके समीपवर्तियोमे है।

आपका

साथके पत्रोकी कथा इतनी सुलझी हुई है कि उसे अपनी ओरसे किसी टिप्पणीके विना ज्योका-त्यो प्रकाशित कर देना यथेष्ट है। ये कागज़ गिनती के उन्तीस हैं और सिलसिलेके लिए इनपर मैंने क्रम-सख्याएँ डाल दी है।

इनमें-से पहला कागज, हिन्दीके एक मासिक पत्रमें छपे हुए विज्ञापनकी कतरन, इस प्रकार है

मालिक चाहिए

एक पढे-लिखे समझदार और भरपूर ईमानदार युवकको अपने लिए एक सुयोग्य और समझदार मालिककी आवश्यकता है। वेतन डेढ-सौ रुपया

मासिकसे प्रारम्भ। काम प्रार्थीकी रुचि, योग्यता और इच्छानुसार। शर्तों सहित आवेदन-पत्र निम्न लिखित पतेसे मँगाये। पोस्ट बाक्स न०

[२]

प्रिय महोदय,

के में मैने आपका विज्ञापन देखा। मुझे आप-जैसे एक नौकर की आवश्यकता है। कृपया शर्तों सहित अपना आवेदन-पत्र भेजिए।

भवदीय

११-१२-१९५२]

[३]

प्रिय महोदय,

आपका ११/१२ का कृपा-पत्र मिला। धन्यवाद। मेरी शर्तें ये है

१—वेतन डेढ़-सौ रुपये मासिकसे प्रारम्भ होगा और प्रतिवर्ष २५) मासिक तरक्कीके हिसाबसे ४००) तक जायेगा। वेतन हर महीनेका पेशगी दिया जायेगा।

२—इस नौकरीका इक़रारनामा पहले आजमाइशके तौरपर आपकी सुविधानुसार कमसे-कम एक और अधिकसे-अधिक तीन वर्षके लिए होगा। उसके पश्चात् हर पाँचवें साल इसका नया कराना आवश्यक होगा। दोनो पक्षोंमें-से कोई भी मेरे साल-भरके वेतनके बराबर रकम दूसरे पक्षको देकर इस ठेकेसे तुरन्त ही मुक्त हो सकेगा।

३—अपनी रुचि, योग्यता और इच्छाके अनुसार जो कुछ भी सेवा मैं आपकी कर सकूँगा, करूँगा, आपको अपनी ओरसे कोई काम नहीं सौंपना होगा और न वैसी कोई आशा करनी होगी।

४—कहीं भी कोई दूसरा रोजगार या किसी दूसरेकी नौकरी करके मैं धन कमानेके लिए स्वतन्त्र हूँगा। अलबत्ता, मेरी ऐसी आमदनी आपकी सम्पत्ति होगी। हर महीनेकी अन्तिम तारीखको मैं ऐसी रकम आपके पास

रवाना कर दिया करूंगा। उस रकमको ही आपको मेरी उस महीनेकी कमाई मानना होगा।

५—अपनी सुविधानुसार साल-भरमें कमसे-कम तीस दिन मैं आपके स्थानपर आपके पास रहनेके लिए बाध्य हूंगा। यही मेरी हाजिरी होगी। आप अपनी ओरसे जितना चाहे मुझे इस बन्धनसे मुक्त कर सकते हैं।

६—मेरे प्रत्येक जवाब-तलब पत्र या प्रश्नका, जो आपको प्राप्त हो, कुछ-न-कुछ उत्तर देनेके लिए आप बाध्य होंगे और इसी प्रकार आपकी ओरसे मैं भी बाध्य हूंगा। इसका यह अर्थ नहीं कि अपनी किसी भी गोपनीय बातको बतानेसे इनकार करनेका अधिकार मुझे या आपको न होगा।

उपर्युक्त छह शर्तें आपको स्वीकार हों तो कृपया लिखें।

भवदीय

ता० १५—१२—१९५३]

[४]

प्रिय

आप बड़े ही मनोरंजक, साथ ही कुछ कामके भी व्यक्ति जान पड़ते हैं। मुझे आपकी शर्तोंपर आपको नौकर रखना स्वीकार है। क्या आप सुविधानुसार इसी महीनेके भीतर कुछ समयके लिए मेरे मेहमान होना स्वीकार करेंगे? तभीसे हमारा ठेका चालू हो जायेगा।

१८—१२—१९५३] आपका

[५]

प्रिय महोदय,

१८ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। इधर पूरे दो महीने तक तो मुझे यहांसे निकलनेकी सुविधा नहीं है। उसके बाद शायद आ सकता हूं। आप चाहें तो हमारा ठेका मिलनेके बादसे ही शुरू कर सकते हैं। लेकिन उसके

पहले यदि किसी दूसरे मालिकसे पट गयी तो आपको निराश भी होना पड सकता है।

आपका

•

२१-१२-१९५३]

[६]

प्रिय

आप अभी नही आ सकते, खैर न सही। कभी तो आयेंगे ही। डेढ़-सौ रुपयेका चेक साथ भेज रहा हूँ, पहले महीनेका वेतन। आगामी पहली जनवरीसे एक वर्षके लिए आजमाइशी-तौरपर आपकी सेवाएँ ले रहा हूँ।

आपका

• • •

२५-१२-१९५३]

[७]

प्रियवर,

कृपा-पत्रके साथ डेढ-सौका चेक मिला। धन्यवाद। कमसे-कम साल-भर के लिए तो अब हम साथ हैं ही।

सस्नेह

• .....

२८-१२-१९५३]

[८]

(मनीआर्डर कूपन)

प्रियवर,

पिछले महीनेकी अपनी कमाई बारह रुपये भेज रहा हूँ। जमा करें।

सस्नेह

३१-१-१९५४]

[९]

प्रिय

अगले तीन महीनेका वेतन एक साथ भेज रहा हूँ, ४५०) का चेक।

आशा है आपको इसमें आपत्ति न होगी।

आपका

२७-२-१९५४]

[१०]

प्रियवर,

इसी लिफाफेमें अपनी इस महीनेकी कमाई डेढ रुपया डाक टिकटों-द्वारा भेज रहा हूँ।

सस्नेह

२८-२-१९५४]

[११]

प्रियवर,

तीन महीनेका वेतन मिला। ऐसा करके आपने अपनी थोडी-सी मेहनत वचा ली है। मुझे इसमें क्यो आपत्ति होती।

सस्नेह

१-३-१९५४]

[१२]

प्रियवर,

इस महीनेकी अपनी कमाई २०५) चेक-द्वारा भेज रहा हूँ।

सस्नेह

३१-३-१९५४]

[१३]

प्रियवर,

आदमी समय पडनेपर उपयुक्त आदमीका सहारा ढूँढता ही है। पिछले डेढ वर्पसे मै जिस कठिन हार्दिक द्वन्द्व और मानसिक संघर्पका सामना कर रहा हूँ उसकी चर्चा शुरूसे चाहते हुए भी मैंने आपसे नही की। लेकिन अव उस समस्याका सवसे कठिन अवसर आ पहुँचा है। इस ओर या उस

ओर जल्द ही उसका निर्णय कर देना अब अनिवार्य हो गया है। प्रश्न बडा ही जटिल है। एक ओर पूज्य पिताजीकी स्नेह-पूर्ण यद्यपि सकुचित कामनाएँ और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यावसायिक सहयोगका प्रश्न है, और दूसरी ओर मेरे और एक अन्य व्यक्तिके आजीवन सुख और शान्ति की—वल्कि जीवन-मरणकी समस्या है। दूसरी वातकी तीव्रताके आगे पहलीका भी ध्यान मुझे कम नही है। मैं एक विचित्र सकटमें हूं।

ऐसे अवसरपर मुझे एक सहृदय, विचारशील मित्रकी आवश्यकता है। मेरा विश्वास है कि मेरे वह मित्र आप है, यद्यपि आपने आज तक अपने व्यक्तित्वको खोलनेवाला एक शव्द भी मुझे नही लिखा और आपको देखने तकका अवसर मुझे अभी नही मिला। आपके सम्वन्धमे अपनी उत्सुकताको मै जानता हूँ और कभी-कभी आश्चर्यके साथ सोचता हूँ कि मेरे वारेमे जाननेकी उत्सुकता आपको क्यो नही है।

क्या आप जल्दी ही सुविधानुसार कुछ दिनके लिए यहाँ नही आ सकते? व्यवसायके कामोमें मैं इतनी वुरी तरह घिरा हूँ कि एक दिनका भी अवकाश निकालना मेरे लिए कठिन है। यहाँ एक दाल मिल, एक तेल मिल, और एक आइस फैक्टरी तथा ' मैं एक सूत मिलकी—चार-चार कारखानोको पूरी देख-रेख मुझे ही करनी पडती है। घरपर वैंकिगका जो पुराना व्यवसाय है उसकी झझटोका वोझ भी मुझपर कम नही है। छोटा भाई अभी इतना सयाना नही कि इन कामोमे कुछ हाथ वटा सके, वह अभी पढ ही रहा है। ऐसी दशामें अवकाशकी समस्या मेरे लिए कैसी है, आप समझ सकते है। हृदयकी वर्तमान स्थितिमें कैसे मैं इन सव मुसीवतोको भी सिरपर उठाये चल रहा हूँ, मैं स्वय नही कह सकता। फिर अवकाश तो जीवनके इन अट्ठाईस वर्षोंमे कभी भी जी खोलकर मैंने पाया हो तो मुझे उसकी याद नही। इतना सव देखकर भी अगर आप जल्द ही यहाँ आनेका अवसर न निकाल सकें तो जैसे भी होगा, मैं एक दिनके लिए आपके पास आऊँगा।

उत्तरकी प्रतीक्षामें,

आपका ही

पुनश्च

सालके शेष आठ महीनेके लिए आपकी भेंट १२००) का चेक इसी पत्रके साथ भेज रहा हूँ और नया खिंचकर आया अपना एक फोटो भी। इस फोटोको अपने पास रखना शायद आप पसन्द करेंगे।

२०-४-१९५४]

[१४]

प्रियवर,

२५ ता० का पत्र मिला। अपने सम्बन्धमें मैं आपकी सहृदय धारणाके लिए कृतज्ञ हूँ। आपके बारेमें जितना जाननेकी मुझे आवश्यकता है उतना मैं जानता हूँ। आपकी प्रस्तुत समस्यापर मैं आपको कोई भी सलाह या सहायता देनेमें असमर्थ हूँ। इसलिए उसका विवरण जानना भी मेरे लिए व्यर्थ है। और फिर मेरी दिलचस्पी मेरे आपके प्रस्तुत सम्पर्कके नाते आपमें है, आपकी समस्याओंमें नहीं। केवल इतना और कह सकता हूँ कि यदि आपमें स्वयं अकेले निर्णय करनेकी शक्ति नहीं है तो किसी निर्णयपर चलनेकी शक्ति भी कैसे हो सकती है।

अभी तो आनेमें असमर्थ हूँ। इन दिनों मैं भी कुछ ऐसे काममें व्यस्त हूँ कि यदि आप आयें भी तो आपको मनोयोग-पूर्वक यथेच्छ समय नहीं दे सकूँगा। मेरी रायमें आप यहाँ आकर अपने समयको व्यर्थ नष्ट न करें। साल के भीतर अपनी तीस दिनकी हाजिरी मुझे याद है। यथावसर आऊँगा ही।

चेक ठीक है। फोटोके लिए विशेष धन्यवाद। इस महीनेकी कमाई ६२) के नोट इसी लिफाफेमें रखकर इसे इन्श्योर्ड रजिस्ट्रीसे भेज रहा हूँ।

सस्नेह

३०-४-१९५४]

[१५]

पिछले पत्रकी डाकखानेकी रसीद

[१६]

प्रियवर,

इस महीनेकी कमाई दस रुपये चेक-द्वारा भेज रहा हूँ।

सस्नेह

३१-७-१९५४]

[१७]

प्रियवर,

पिछले महीनेमें मेरी कुछ आय नही हुई। सूचना दे रहा हूँ।

सस्नेह

१-७-१९५४]

[१८]

प्रियवर,

इस महीनेकी अपनी कमाई ३८) चेक-द्वारा भेज रहा हूँ।

सस्नेह

३१-७-१९५४]

[१९]

प्रियवर,

मैं नही समझ सका कि आप कैसे आदमी है और अपने-मेरे सम्बन्धको अपनी ओरसे कहाँतक उचित रूपमे निभा रहे है। उन दिनो यदि आप दो दिनके लिए भी मेरे पास आ जाते तो मेरा काम बहुत कुछ सुगमतासे सँभल जाता। खैर, वह आपकी इच्छा थी।

भवदीय

१६-८-१९५४]

[२०]

(रजिस्टर्ड ए डी)

प्रियवर,

१६ ता० का पत्र मिला। आपका असन्तोष मैं देख रहा हूँ। वह साधारणतया अस्वाभाविक भी नही है। लेकिन मुझे उन शर्तोंपर नौकर रखते समय आपको इन सब बातोंके लिए अपने मनमें समाई कर रखनी चाहिए थी। फिर भी यदि आपको आगे मेरी सेवाओंकी आवश्यकता नही हो तो एक अच्छा मार्ग यह है कि हम दोनों एक दूसरेके सम्पर्कसे एक साथ इस्तीफ़ा दे दें। मैं अकेला त्याग-पत्र नही दे सकता, क्योंकि शर्तके अनुसार साल-भरका अतिरिक्त वेतन लौटानेकी मेरी समाई नही है। अकेला आपका भी त्याग-पत्र मैं पसन्द नही करूँगा, क्योंकि बारह महीनेका अतिरिक्त वेतन स्वीकार करनेकी मेरी इच्छा नही है। इस सम्बन्धमें आपका विचार मैं जानना चाहता हूँ। कृपया लिखें। मुझे कुछ दुःख है। आप शायद अपने पैसोंका कुछ गलत मूल्य लगा रहे हैं।

सस्नेह

१९–८–१९५४]

[२१]

उपर्युक्त पत्रकी रसीद।

[२२]

प्रियवर,

मेरा १९/८ का पत्र आपके हाथों पहुँच गया है। उत्तरकी प्रतीक्षा है। कुछ-न-कुछ उत्तर देनेके लिए आप बाध्य हैं। अपनी नोकरीकी शर्त नं० ६ की ओर आपका ध्यान निमन्त्रित करता हूँ।

सस्नेह

२६–८–१९५४]

[२३]

(रजिस्टर्ड ए डी.)

प्रियवर,

इस महीनेकी अपनी कमाई १२०) चेक-द्वारा भेज रहा हूँ। मेरे १९ और २६ तारीखोके पत्रोका आपने कोई उत्तर नही दिया। यह आपकी ओर से एक महत्त्वपूर्ण शर्तका उल्लघन है। नियमानुसार मै अब अपने-आपको आपसे निर्बन्ध समझ सकता हूँ, अतएव मेरा निश्चय है कि यदि १५ सितम्बर तक मुझे आपका कोई पत्र न मिला तो मैं शेष दिनोका अग्रिम जमा आपका रुपया लौटाकर आपसे स्वतन्त्र हो जाऊँगा।

सस्नेह

३१-८-१९५४]

[२४]

३१-८-१९५४ के पत्रकी रसीद।

[२५]

(रजिस्टर्ड ए. डी.)

प्रियवर,

आपका पत्र नही मिला। अपने ३१।८ के पत्रके अनुसार मै आजकी तारीखसे आपसे स्वतन्त्र होता हूँ। साढे तीन महीनेका अग्रिम जमा वेतन ५२५) और इन महीनेकी मेरी कल तककी आमदनी ५५०) कुल १०७५) चेक-द्वारा भेज रहा हूँ।

सादर आपका

१६-९-१९५४]

[२६]

१६-९-१९५४ के पत्रकी रसीद।

[२७]

प्रियवर,

गत रविवारको आपकी नवजात पुत्रीकी मृत्यकी सूचना मुझे आज अभी मिली। आप दोनोकी मनोव्यथाका मैं कुछ अनुमान कर सकता हूँ। इस अवसरपर मेरी समवेदनाको अपने हृदयोमें स्थान देनेका प्रयत्न करें। कर्म-विधानके अनुसार उसका डेढ मासका ही आप दोनोका साथ था। आपने आदर्श रूपसे मानवोचित साहसके साथ उस नवागत आत्माका स्वागत और सत्कार किया, मैं मानता हूँ। आप गहराईमें देखें, तो अब उसका विछोह आपके और उसके लिए कोई अहितकी बात नही है।

पिछले दिनोकी संघर्ष-मयी परिस्थितियोमें आपने अपना बहुत-सा ऋण अदा किया है। उसमें आप विजयी होकर निखर आये है। आपपर मुझे गर्व है और इसीलिए मैं आज पहली बार स्वतन्त्र मित्रभावसे पत्र लिखकर आपको बता रहा हूँ, इसीलिए—आपका स्थान मेरे मित्रोमें बहुत ऊँचा है। आप और आपकी नव-परिणीता धर्मपत्नी दोनोको मेरी हार्दिक श्रद्धा प्राप्त है। जीवनमें आप दोनो चाहेंगे तो बहुत बडा काम कर सकेंगे। बच्चीका अधिक दुःख न करें। स्नेह और सेवाके लिए सारा ससार आपके सामने खुलेगा। आप दोनो ससारमें आनेवाली अनेक उच्चतर आत्माओंके लिए शरीर जुटानेका अधिकार रखते हैं।

अपने पैतृक व्यवसायोंसे वञ्चित होकर—मैं कहूँगा उनके बन्धनोंसे छूट कर—आपने साहित्य-प्रकाशनका जो नया व्यवसाय प्रारम्भ किया है उसमे व्यवसायी और लोकसेवी, दोनोके रूपमें आप बहुत आगे बढ सकते हैं। बढनेकी आपमें क्षमता है। अपने कर्तव्य और पौरुषको सामने रखिए।

एक छोटी-सी अंग्रेजी पुस्तिका Who To Those mourn भेज रहा हूँ। इससे आपको अपनी वर्तमान पीडामें सान्त्वना मिलेगी।

सस्नेह आपका

१८-११-१९५४]

पुनश्च

२ जूनको आपके विवाहके दिन मै आपके नगरमे ही कार्यवश उपस्थित था। वर-वधूके कुछ दूरसे दर्शन मैंने किये थे।

..

१८-११-१९५४]

[२८]

प्रियवर,

आपके मित्र श्री आये थे और दो दिन मेरे साथ ठहरकर कल वम्बईके लिए रवाना हो गये। आपके स्नेह और सौहार्दकी क्षमतापर मैंने कभी भी सन्देह नही किया। मुझे आपसे रत्ती-भर भी शिकायत नही है। मुझे तो आप बहुत ऊँचे जँचे है। भारतीय व्यवसाय-क्षेत्रमे आप-जैसे युवक कम ही निकलेंगे। आपका व्यवसाय-साहस enterprise प्रशसनीय है। इतना होते हुए भी मेरे-आपके उस पुराने नातेके पुन स्थापनका अब कोई प्रश्न नही है। सच तो यह है कि आपने अपने-आपको उसके अयोग्य ही सिद्ध किया है। और फिर क्या आप जीवन-भर मुझे अपना नौकर ही बनाये रखना ठीक समझते हैं ? मेरी मित्रतापर तो आपका पूरा अधिकार है, मै पहले ही लिख चुका हूँ। उसे अपर्याप्त न समझे। मालिक अब भी मुझे कोई दूसरा खोजना पड़ेगा—उसकी आवश्यकता अभी मेरी पूरी नही हुई।

हाँ, मै भी मानता हूँ कि साढे आठ महीने मुझे नौकर रखकर आप किसी घाटेमे नही रहे। आपको 'नाराज़ कर देनेवाले' ३० अप्रैलके मेरे उस पत्रका आप जो मूल्य लगाते है उससे मैं सहमत हूँ, लेकिन उसका जो व्यापक प्रभाव आप अपने लिए आँकते है उसमें मुझे कुछ सन्देह है।

आप जब आ सकें, आइए। आपके स्वागतके लिए मै पूर्णतया स्वतन्त्र हूँ। सपत्नीक आइए तो और भी अच्छा। जीको आपसे भी ऊँची बधाई देना चाहता हूँ।

सस्नेह

..

३-१२-१९५४]

[२६]

प्रिय ..

१२ तारीखको शामकी मेलसे हम दोनो आपके पास पहुँच रहे है। आशा है, द्वार खुले मिलेंगे।

आपका

९-१२-१९५४]

× × ×

इस पत्रात्मक कथाकी यह समाप्ति है। यह कथा अंको और तारीखोंको विशेष रूपसे ध्यानमें रखकर पढनेकी चीज है। पत्र-प्रेषक महोदयको जितना कुछ मैं इस पत्र-व्यवहारसे समझ पाया हूँ उसके आधारपर सिफारिश कर सकता हूँ कि जो महानुभाव इनकी शर्तोपर इन्हें नौकर रखना चाहते हो और रख सकते हो वे इनका सौदा कर देखें।

गङ्गाका सँदेसा

उस रात भी हरसहाय बाबू अपने नियमानुसार तीन बजे उठ बैठे, यद्यपि सारी रात उन्होंने जागते ही बितायी थी। उनकी दुनिया उनके एकमात्र पुत्र किशोर तक ही सीमित थी। उससे सम्बन्ध रखनेवाली मधुर कल्पनाओंमें उन्होंने पिछले बाईस वर्ष काटे थे। लेकिन इधरके कुछ वर्षोंसे उनकी उन कल्पनाओंपर आघात होने लगे थे किशोरने एक ऐसे घरकी ऐसी लडकीसे कुछ महीने पहले विवाह कर लिया था जिसे हरसहायजी किसी तरह पसन्द नहीं कर सकते थे। पिताकी इच्छा और आज्ञाके विरुद्ध जाना और वह भी विवाह-जैसे मामलेमें, उस समय तक उनकी कल्पनासे बाहरकी बात थी। पुत्रके इस व्यवहारसे उनके हृदयको जीवनका सबसे गहरा आघात लगा था। विवाह हुए तीन महीने भी पूरे न हो पाये थे कि पिछली रात किशोरने उनके सामने प्रस्ताव रखा "बाबूजी, मैं अलग मकान लेकर रहना चाहता हूँ, मुझे मेरा हिस्सा देकर आप अलग कर दीजिए।" यह सुनकर हरसहायजी तिलमिला उठे। उन्हें लगा, मानो किसीने उनकी छातीमें भाला भोंक दिया। वह कुछ भी उत्तर नहीं दे सके। सारी रात उनके पेटमें आग जलती रही। घरमें उनकी पत्नी और तीन लडकियाँ और थी। उनमें-से सबसे बडीकी आयु बारह साल की थी। किशोरकी शादीके समयसे उनका घर मातमका घर बना हुआ था।

बाबू हरसहाय नित्यप्रति कुछ रात रहे उठकर ग्वालटोलीसे गंगाजीके परमट घाटपर स्नान करने जाते थे। यह उनका पच्चीस वर्षका पुराना नियम था। किशोरकी ओरसे पिछले पाँच-सात महीनोंसे उनपर जो चोटें पड रही थी वे अभी तक उन्हें इतना अशक्त नहीं कर पायी थी कि वह अपना यह नियम पालने में असमर्थ होते। आज भी ठीक समयपर उनके शिथिल पैर उन्हें गंगाजीकी ओर ले चले। नियमपूर्वक उन्होंने स्नान किया। स्नानके पश्चात् सूर्य देवता

को जल देनेके लिए वह आँख वन्द किये हुए अजलिमें पानी ले ही रहे थे कि उनके हाथमे कोई हलकी-सी चीज़ टकरायी और उन्होने देखा पानीमे हलके नीले रगका एक लिफाफा तैरता चला जा रहा है। उसे उन्होने उठा लिया। लिफाफा मोमिया कागज़का वना हुआ था। उजाला हो आया था। वह देख सके उसपर लिखा हुआ पता पानीमे घुल गया था, लेकिन भीतरका पत्र विल-कुल सुरक्षित था। जल्दी-जल्दी ध्यान-पूजामे निवृत्त हो उन्होने गगातटपर ही उस पत्रको पढ डाला। पत्र यह था

प्रिय वावूजी,

मै पिछले तेईस वर्षसे सरकारी अदालतमे आपपर दावा करनेकी वात सोच रहा था। लेकिन आज एक-सौ आठवें दिन गगाजीमे आपके आँसू सम-र्पित होनेपर मुझे अपना वह विचार छोडना पड रहा है। मुझे दावेका विचार ही नही छोडना पड रहा, उल्टा, आपके लिए कुछ कामकी भेंट लेकर आपके सामने आना पड रहा है।

"किशोरका दु ख इस समय आपका सवसे वडा दु ख है। क्या आप सम-झते है कि इसके वाद या इससे वडा कोई दूसरा दु ख अव आपपर नही आयेगा? गगाजीमे आपके आँसुओकी एक-सौ आठवी आहुतिके उत्तरमे आपको यह वतानेका काम मुझपर आ पडा है कि अभी आपपर और भी मुसीवतें आयेंगी और इनसे भी वडी-वडी आयेंगी। यह मैं आपको कोई शाप नही, केवल एक सूचना दे रहा हूँ। शाप और वरदानकी दृष्टिसे तो यह शापके मुक़ा-वले वरदान ही अधिक है। आप हर महीने वडे प्रेमके साथ अपने पाठमे पढ जाते है। 'मेरे वहुतसे जन्म व्यतीत हो चुके हैं और तुम्हारे भी '

इसे आप मानते भी हैं, पर इसपर आपने आज तक विश्वास नही किया। चौंकिए नही, मैं सच कहता हूँ, आपने इसपर आज तक रत्ती-भर भी विश्वास नही किया। लेकिन आज गङ्गाजीमें एक-सौ आठ वार अपने दर्द-भरे आँसू चढा चुकनेपर आपको अधिकार हो गया है कि आप उस ऊँची सचाईपर कुछ विश्वास कर सकें।

आपकी आंखे दो मोटी दीवारोंके बीच कैद है, एक आपकी पीठके पीछे है, दूसरी आपके सामने। पहली दीवारके पीछे और दूसरीके आगे आप नही देख सकते। आप चल रहे है, खडे नही रह सकते। ये दोनो दीवारे भी आपके साथ-साथ चल रही है। पिछली दीवार आपसे केवल एक पग पीछे रहती है, दूसरी एक पग आगे। उनके आगे-पीछे आप नही देख सकते और अपने दो पगके फासलेको ही अपनी दुनिया मानते है। लेकिन आप हजारो पगोकी दूरी पार कर आये है और उतनी ही और भी पार करेंगे। आप जिसे अपने जीवनका भूत और भविष्य कहते है वह इन दो संकरी दीवारोंके बीच सीमित है। अपने भूत और भविष्यके इन दो पगोंके बीच आपने जितने सुख-दु ख उठाये है या और उठायेंगे, वे ही कम नही है। अगणित दु ख-सुख, इनसे भी वडे-वडे, आपने इस जीवनसे पहले उठाये है और इस जीवनके वाद भी उठायेंगे। उन्हे आप अपने पिछले और आगे आनेवाले जन्मोंके दु ख-सुख कह सकते है। दु ख-सुख दो अलग वस्तुएँ नही, एक ही वस्तुके दो पहलू है। दु ख-सुख जीवन-दानी सूर्यके तापके समान है। सूर्यका ताप जवतक मनुष्यकी देहको प्रिय लगता है वह उसे सुख कहता है, जव वह अप्रिय और असह्य हो जाता है तव उसे ही दु ख कहने लगता है। सुख-दु खमे ही मनुष्य पलता और आगे वढता है। यह सव कहनेका मेरा अभिप्राय यही है कि सुख-दु ख आपपर पहले भी आये है और आगे भी आयेंगे, इनके विना आप आगे नही वढ सकते। ये आवश्यक है। जितना आप आगे वढेंगे—उन्नति करेंगे—उतने ही वडे-वडे दु ख (और सुख भी) आपके सामने आयेंगे। दु खोंसे दु खोको सहनेकी शक्ति आप पायेंगे। यह शक्ति आगे आपके वडे काम आयेगी। यह वात आपके लिए ही नही, हरेकके लिए।

ऊपरकी वात समझने और उसपर विश्वास करनेमे आपको कठिनाई हो सकती है। मैं या कोई भी आपको या किसीको ज्ञान नही दे सकता। ज्ञान-उपदेश देनेके लिए नही कुछ सच्ची कथा आपके सामने रखनेके लिए मैं

आपको यह पत्र भेज रहा हूँ ।

आपके समाजमें पारिवारिक सम्बन्धोमे जो नयी उथल-पुथल आरम्भ हो गयी है उसकी ओर आपका, और आपके बहाने औरोका भी ध्यान मुझे खीचना है । मतलबके लिए बाप-बेटेके सम्बन्धोकी ओर सकेत ही काफी है । बेटा बापकी आज्ञामे चले, उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम या इच्छा न करे, उसकी प्रसन्नताके लिए अपनी किसी भी चाहको पीछे डाल दे, यह क्रम हमारे हिन्दू-परिवारोमें बीसियो पीढियोसे बहुत कुछ सफलता पूर्वक चला आ रहा था । घरके बडे शासन करते थे, छोटे अनुशासन मानते थे । एक समय तकके लिए यह व्यवस्था बडी सुन्दर और सुखद थी । इसमे बहुत आराम और सन्तोष था । लेकिन यह व्यवस्था, कुछ अँधेरेमें ही चल सकती थी । प्रकाशकी धुँधली किरणोके पडते ही इसका छीजने लगना स्वाभाविक था । प्रकाशको भरपूर भीतर आने देनेके लिए इसे बिलकुल उधेड देना आवश्यक है ।

पारिवारिक सम्बन्धोकी इस नयी उथल-पुथलकी तसवीर क्या आपके सामने खीचनेकी भी आवश्यकता है ? आजके लडके कुछ सयाने होते ही अधिकाश माँ-बापके हाथोंसे निकलने लगते हैं । वे जवाब देते है, तरह-तरह की चालोंसे उनकी आज्ञाओका उल्लघन करते है । उनके कठोरसे-कठोर दण्ड-शासनको उलट फेंकना चाहते है । अवज्ञा और विरोधके, स्वतन्त्रता और 'आवारापन' के भाव उनमें तेजीसे उभरते दीखते है । बडोके सिखावन और उपदेश उन्हें बिलकुल पसन्द नही आते । अच्छी, हितकी बातोका भी वे उलटा अर्थ लगाते हैं । अनुशासनको रत्ती-भर भी नही मानना चाहते । आजकलके माँ-बाप जब बेटे-बेटियाँ थे, तब अपने माँ-बापके साथ वे कभी ऐसा नही कर सकते थे, न करनेकी सोच सकते थे । ये हैरान है कि इनके बच्चे कैसे इतने उच्छृङ्खल निकल रहे है । उनके पुराने घरोंमें, जहाँ पीढियोसे आज्ञाकारिताका शासन चलता आया था यह नयी अनहोनी बात बढती हुई दीखने लगी है । यह तबतक बढती जायेगी जबतक परिवारोंके

बडे लोग इसे समझकर इसके साथ उचित समझौता करनेके लिए तैयार न होंगे।

इसे समझनेके लिए आपको अपनी और अपने बच्चेकी उन दीवारोंके आर-पार देखना होगा—देख न सके तो कमसे-कम अनुमान करना होगा—कि उनके आगे-पीछे क्या हो सकता है। आप जब इस संसारमें अबकी बार आये तो अपने पिछले जन्मोंके कर्मके अनुसार सुख-दुःख भोगनेका प्रबन्ध और पिछले संस्कारोंके अनुसार गुण-स्वभाव लेकर आये। कर्मके देवताओं-ने आपके जन्मके लिए उचित स्थान और माँ-बाप चुने। अपने संस्कारोंके अनुसार आप जीवनमें भले या बुरे रास्तोंपर बढे। आपके माँ-बापने आपके कर्मोंके अनुसार ही आपके उन रास्तोंमें बढनेमें कुछ मदद या कुछ रुकावटें डालीं। उनसे आपकी चाल कुछ तेज या धीमी भले ही हुई, लेकिन कोई भी शक्ति आपको आपके संस्कारके चुने हुए रास्तेपर बढनेसे रोक न सकी। मुझे मालूम है, आपके पिता घरके रईस और बहुत ऐश-आराम-पसन्द थे और आपका झुकाव प्रारम्भसे ही धर्म और भक्तिकी ओर था। उन्होंने आपको आपके रास्तेसे हटाकर अपने रास्तेपर लगाना चाहा। आप आज्ञा-कारी थे। अपनी अरुचि होते हुए भी केवल उनके दबावके कारण आप मांस-मदिराका सेवन पूरे तौरपर नहीं छोड सके। आपकी इच्छा न होते हुए भी उनकी इच्छासे आपने छोटी उम्रमें विवाह भी स्वीकार किया, अपनी इच्छाके विरुद्ध उनके बताये हुए कार-बारमें भी लगे। इन सब बातों-से आपकी प्रगतिको धक्का लगा। यदि उनकी ओरसे ये रुकावटें न पडती तो आप आज कानपुरके एक चमडा-घरमें एक बाबू बने हुए केवल दैनिक गंगा-स्नानमें अपने-आपको सीमित न रखकर यहाँ गंगोत्तरी आश्रममें मेरे साथ होते और आपकी धर्म-साधना बहुत आगे बढी हुई होती। आपकी प्रगतिमें बाधा डालकर उन्होंने अपनी और आपकी, दोनोंकी कुछ हानि ही की है। इस घाटेका हिसाब उन्हें और आपको आगे चलकर बराबर करना पडेगा। अब आप अपने पिताकी जगह अपने-आपको और अपनी जगह

किशोरको रखकर देखिए। आप भी उसकी राहमे वैसे ही रोडे लगा रहे है जैसे आपके पिताजीने आपकी राहमे लगाये थे। हरेक जीव मसारमे अपना स्वतन्त्र जीवन विताकर शुभ-अशुभ कर्मोकी कमाई करनेके लिए आता है। अपने सस्कारोके अनुसार ही वह कर्म कर सकता है और उसीमे लाभ भी उठा सकता है। माँ-वापके सस्कारोपर चलनेमे—वे कितने भी उत्तम क्यो न हो—वह कोई लाभ नही उठा सकता। गगा-स्नान और गीता-पाठका असर किशोरपर ऐसा कभी भी नही पड सकता जैसा आपपर पडता है। इसके लिए अगर आप उसे मजबूर कर सके—जैसा कि आपने पिछले कुछ दिनो तक किया भी था—तो उसका प्रभाव भलेकी जगह बुरा ही उसपर पडेगा। आपके लिए घृणा, विरोध और छल-कपट-द्वारा इस हुकूमतको उतार फेकनेकी भावना ही उसके हृदयमें बढेगी, जैसा कि उन कुछ दिनो तक आप देख चुके हैं। किशोरके सस्कार और उसकी प्रकृति आपसे बिलकुल भिन्न है। आम-तौरपर सभी बाप-बेटोमे ऐसा अन्तर होता है। आप आवश्यक सुभीता दें तो किशोर दुनियाकी दौड-धूपमें खुलकर हिस्सा ले सकता है, खूब पैसा कमा सकता है और इसके साथ ही दुखियो और जरूरतमन्दोके लिए दया और सेवाका भाव भी उसके भीतर विशेष जाग सकता है। उसके बढनेका रास्ता ऐसा ही है। पैसा कमाने और दुनियाके सुख उठानेके सिलसिलेमें आपके धार्मिक विश्वासोके अनुसार ग़लत और जोखिमके रास्तो पर चले बिना और दुःख-मुसीबतें उठाये बिना उसे जीवनका आवश्यक अनुभव कभी नही हो सकता। उसे गलत रास्तेसे बचानेका प्रयत्न करके आप उसे केवल आवश्यक जानकारी, आवश्यक वस्तुओ और उसके आवश्यक सेवा और सहानुभूतिके गुणोंसे ही उसे कुछ समय तक दूर रखनेका प्रयत्न कर सकते है।

आप सोचते होगे कि आपने किशोरपर कोई सख्ती नही की, कोई दबाव नही डाला, उसका सदैव लाड-प्यार किया और जो भी उसने खाना-पहनना चाहा, वही उसे खिलाया-पहनाया। यह ठीक है कि आपने कभी

उसपर कठोरताका शासन नही किया, लेकिन मुखसे कहे हुए शासनसे भी बडा बोझ इच्छा और आशाका होता है। आपने उसके बारेमे इच्छाएँ उठायीं, उससे आशाएँ बांधी। यह आपका उसपर बहुत बडा जुल्म था। आपको उसमे कोई आशा रखनेका हक न था। आपकी इच्छाएँ ही उसकी भी इच्छाएँ हो, इस चाहमे बढकर आप उसपर कोई अत्याचार नही कर सकते थे। आपने उसे जन्म दिया, कष्ट उठाकर उसे पाला-पोसा, लेकिन इसका मूल्य आप कदापि यह नही ले सकते कि वह आपकी इच्छा और आपके रास्तेपर चले। जो कुछ आपने उसके लिए किया, उसका मूल्य पहले ही आप अपने पितासे पा चुके हैं, यह आप भूल जाते है। आपका किशोर अपने रास्तेपर चलनेके लिए—जिससे जैसा चाहे प्रेम या घृणा, व्यवहार या उदासीनता भला या बुरा करनेके लिए स्वतन्त्र है। उसके कामो और उनके परिणामोसे उसका ही नाता है, आपका नहीं।

समय आ रहा है कि हम लोग बाप-बेटेके नातेको समझे। यही समझानेके लिए ये नयी अवज्ञाकारिताएँ और हुकुम-उदूलियाँ हमारे घरोमे पैदा हो रही है। बापका कर्तव्य है कि बेटेको आरामसे पाले, उसके रुझानोको परखनेका प्रयत्न करे, उसकी अच्छी प्रवृत्तियोको प्रोत्साहन दे और बुरी प्रवृत्तियोको नरमी और चतुरताके साथ उसकी दृष्टिसे छिपाने और दबानेका उपाय करे। इससे उसकी अच्छाइयाँ तेज़ीसे पनपेंगी, बुराइयाँ किसी सीमा तक शिथिल पड जायेंगी। अपने प्रेम और सद्व्यवहारसे उसके भीतर प्रेम और सद्व्यवहारको जगानेका प्रयत्न करे और यदि उसका हृदय और मस्तिष्क इसकी ठीक प्रतिक्रिया लौटानेमे असमर्थ हो तो उसकी ओरसे अपनी आशाओको घटाये और प्रेम-व्यवहारको और भी सबल बनानेका प्रयत्न करे। यह आपका समझदारीका कर्तव्य है। अपना कर्तव्य अपने बच्चेके साथ वह जैसा निभा सकेगा, निभायेगा। जिस आत्माने अबकी बार आपका बच्चा बनकर जन्म लिया है, वह किसी पिछले जन्ममें आपके लिए अपरिचित भी रहा होगा, किसीमें वह आपका

मित्र, किसीमे शत्रु और किसीमे माँ या बाप भी रहा हो सकता है। आगे भी आपके और आपके बच्चेके इसी प्रकारके बदलते हुए नाते हो सकते है। सभी जीव ससारमे अपने पैरोपर खडे होकर अपनी-अपनी कमायी करनेके लिए आते है। आत्मिक दृष्टिकोणसे बेटा होनेसे कोई छोटा या बाप होनेसे बडा नही हो जाता। आज जो आपका बेटा है, पिछले किसी जन्ममे वह आपका पिता और अगले जन्ममे आपका अफसर या बडा गुरुभाई भी हो सकता है। तब फिर आपको क्या अधिकार है कि केवल इस जन्मके लिए जो आपके अधीन, आपके बेटेके रूपमे जन्म लेकर आया है उसपर आप अपनी इच्छा और बुद्धिकी हुकूमत चलायें और इस प्रकार एक छोटे-से अवसरका अनुचित उपयोग करें।

आपका बेटा, आपका साथी, आपका बराबर, बचपनसे आपका आदर-णीय मेहमान है। मानवताकी पाठशालामे वह आपसे कुछ आगे या कुछ पीछे हो सकता है, यह कोई बडी बात नही है। उसके प्रति आपका कुछ कर्तव्य है। उस कर्तव्यका आप उससे कोई मूल्य नही माँग सकते। यदि आप बलपूर्वक उससे कुछ मूल्य वसूल करते है तो वह मूल्य नही, हजार प्रतिशत ब्याजपर लिया हुआ ऋण है, जिसका आगे चुकाना आपके लिए अति कठिन कार्य होगा। पिताका कर्तव्य है कि अपनी ओरसे प्रेम, क्षमा, शान्ति और सद्व्यवहारका वातावरण बेटेके आसपास सदैव बनाये रखे और फिर वह जैसा उगे, उगने दे। बापोको अपने बेटोंके साथ ऐसे सम्बन्धोकी जानकारी मिले, वर्तमान उथल-पुथलका यही अभिप्राय है। जिन गलत और सँकरे घेरोमें वे उन्हें बाँध रखना चाहते हैं, उनमें बँधे रहनेसे उनकी और समाजकी बहुत बडी हानि है। जब माँ-बाप अपनी ओरसे उचित ढील रखेंगे तब वे फिर देखेंगे कि उनके बेटे सेवा, प्रेम और आज्ञा-कारितामे पहलेके बेटोंसे कम नही है। नये समाजके लिए नये युगका यह भी एक आवश्यक सन्देश है, जो नरमी या कडाईसे, जैसे भी हो सकेगा, उनके गले उतारा जायेगा।

किशोर जो चाहे, आप उसे करने दीजिए। उसने अपनी ... कर दीजिए। जहाँ वह जाये, जाने दीजिए। आपने अपनी ... उसपर लादकर उसे और भी अधिक हठीला और अपना विरोधी ... है। अब भी वह अपने घाव भर सकता है। हृदयमें उसके ... न रखिए। प्रसन्न मनसे उसे आशीर्वाद दीजिए। उसके प्रति ... रास्ता है। तभी आप और वह, दोनों एक-दूसरेको पहचान ...।

किशोर आपका बेटा नही, मेरा बेटा है। बाईस ... बेटा बनाकर कुछ कठोरताके साथ रखा। लेकिन बावन ... बेटा बनकर बडे आदरसे मेरे साथ रह चुका है। ... ज्यादतियोको देखकर ही मैंने अकसर आपपर सरकारी ... वापस लेनेके लिए दावा करनेकी बात सोची थी। ... अदालत एक दूसरी ही सरकारी अदालत थी और उसने भी ... बेटा किशोर नही मैं हूँ ?

क्या आप अपनी तग दीवारोके आर-पार कुछ थोडा-सा ...

आपका पुराना ...

जीवनानन्द

पत्र समाप्त करते ही बीस वर्ष पहलेका एक दृश्य हरसहाय ... पटलपर एकदम झूम गया। पत्नी और दो वर्षके किशोरको लेकर ... ऋषिकेशकी तीर्थयात्राको गये हुए थे। ऋषिकेशमे भ्रमण करते ... साधुके आश्रममें जा निकले थे। साधु नवयुवक अत्यन्त रूपवान् और तेजस्वी था। इनके अभिवादनपूर्वक कुटी-प्रवेशपर उसने "आइए पिताजी!" ... इनका स्वागत किया था। इस सम्बोधनका कुछ विरोध करनेपर साधुने कहा था "विरक्त और गृहस्थ होनेसे क्या अन्तर पडता है। क्या यह सम्भव नही कि आप पिछले जन्ममें मेरे पिता रहे हो ?" साधुकी दृष्टिसे उस समय वह स्नेह बरस पडा था जो एक आत्मज शिशुकी प्यार-भरी आँखोंसे बरसता है। वे शब्द और वह दृष्टि हरसहायजी बहुत दिनो तक भूल नही सके

मित्र, किसीमे शत्रु और किसीमे माँ या बाप भी रहा हो सकता है। आगे भी आपके और आपके बच्चेके इसी प्रकारके बदलते हुए नाते हो सकते है। सभी जीव ससारमे अपने पैरोपर खडे होकर अपनी-अपनी कमायी करनेके लिए आते है। आत्मिक दृष्टिकोणसे बेटा होनेसे कोई छोटा या बाप होनेसे बडा नही हो जाता। आज जो आपका बेटा है, पिछले किसी जन्ममे वह आपका पिता और अगले जन्ममे आपका अफसर या बडा गुरुभाई भी हो सकता है। तब फिर आपको क्या अधिकार है कि केवल इस जन्मके लिए जो आपके अधीन, आपके बेटेके रूपमे जन्म लेकर आया है उसपर आप अपनी इच्छा और बुद्धिकी हुकूमत चलाये और इस प्रकार एक छोटे-से अवसरका अनुचित उपयोग करें।

आपका बेटा, आपका साथी, आपका बराबर, बचपनसे आपका आदरणीय मेहमान है। मानवताकी पाठशालामें वह आपसे कुछ आगे या कुछ पीछे हो सकता है, यह कोई बडी बात नही है। उसके प्रति आपका कुछ कर्तव्य है। उस कर्तव्यका आप उससे कोई मूल्य नही मांग सकते। यदि आप बलपूर्वक उससे कुछ मूल्य वसूल करते है तो वह मूल्य नही, हजार प्रतिशत ब्याजपर लिया हुआ ऋण है, जिसका आगे चुकाना आपके लिए अति कठिन कार्य होगा। पिताका कर्तव्य है कि अपनी ओरसे प्रेम, क्षमा, शान्ति और सद्व्यवहारका वातावरण बेटेके आसपास सदैव बनाये रखे और फिर वह जैसा उगे, उगने दे। बापोको अपने बेटोंके साथ ऐसे सम्बन्धोकी जानकारी मिले, वर्तमान उथल-पुथलका यही अभिप्राय है। जिन गलत और संकरे घेरोमें वे उन्हें बांध रखना चाहते है, उनमें बंधे रहनेसे उनकी और समाजकी बहुत बडी हानि है। जब माँ-बाप अपनी ओरसे उचित ढील रखेंगे तब वे फिर देखेंगे कि उनके बेटे सेवा, प्रेम और आज्ञाकारितामे पहलेके बेटोसे कम नही है। नये समाजके लिए नये युगका यह भी एक आवश्यक सन्देश है, जो नरमी या कडाईसे, जैसे भी हो सकेगा, उनके गले उतारा जायेगा।

किशोर जो चाहे, आप उसे करने दीजिए। उससे अपनी आशाएँ समाप्त कर दीजिए। जहाँ वह जाये, जाने दीजिए। आपने अपनी जिद और चाहे उसपर लादकर उसे और भी अधिक हठीला और अपना विरोधी बना लिया है। अब भी वह अपने घाव भर सकता है। हृदयमें उससे कोई मैल या दुःख न रखिए। प्रसन्न मनसे उसे आशीर्वाद दीजिए। उसके प्रति आपका यही रास्ता है। तभी आप और वह, दोनो एक-दूसरेको पहचान सकेंगे।

किशोर आपका बेटा नही, मेरा बेटा है। बाईस साल आपने उसे अपना बेटा बनाकर कुछ कठोरताके साथ रखा। लेकिन बावन साल तक वह मेरा बेटा बनकर बडे आदरसे मेरे साथ रह चुका है। आपकी पिछले दिनोकी ज्यादतियोको देखकर ही मैंने अकसर आपपर सरकारी अदालतमे, अपना बेटा वापस लेनेके लिए दावा करनेकी बात सोची थी। निस्सन्देह वह सरकारी अदालत एक दूसरी ही सरकारी अदालत थी और इसमे भी आगे आपका बेटा किशोर नही मैं हूँ ?

क्या आप अपनी तग दीवारोके आर-पार कुछ थोडा-सा देख सकेंगे ?

आपका पुराना साथी
जीवनानन्द

पत्र समाप्त करते ही बीस वर्ष पहलेका एक दृश्य हरसहाय बाबूके स्मृति-पटलपर एकदम झूम गया। पत्नी और दो वर्षके किशोरको लेकर वह हरद्वार-ऋषिकेशकी तीर्थयात्राको गये हुए थे। ऋषिकेशमे भ्रमण करते हुए वे एक साधुके आश्रममे जा निकले थे। साधु नवयुवक अत्यन्त रूपवान् और तेजस्वी था। इनके अभिवादनपूर्वक कुटी-प्रवेशपर उसने "आइए, पिताजी!" कहकर इनका स्वागत किया था। इस सम्बोधनका कुछ विरोध करनेपर साधुने कहा था "विरक्त और गृहस्थ होनेमे क्या अन्तर पडता है। क्या यह सम्भव नही कि आप पिछले जन्ममें मेरे पिता रहे हो ?" साधुकी दृष्टिमे उस समय वह स्नेह बरस पडा था जो एक आत्मज शिशुकी प्यार-भरी आँखोंसे बरसता है। वे शब्द और वह दृष्टि हरसहायजी बहुत दिनो तक भूल नही सके

थे। वालक किशोरके मस्तकपर हाथ रखते हुए साधुने उनसे ही कहा था "इसे आप ले आये। यह मेरा राजा बेटा है।"

हरसहाय बाबूको अब लगा कि सचमुच पिछले जन्ममें वह साधु उनका पुत्र और किशोर उनका पौत्र था। कुछ देर बाद जब उनका भावावेश शान्त हुआ, उन्होंने गङ्गाका जल उसी लिफाफेपर लेकर उसे माथेमे लगाते हुए कहा

"गङ्गा माता, तेरा सन्देश मेरे हृदय और आंखोपर है। तूने आज मेरे अज्ञानको धोकर मेरा दुःख-दर्द भी बहा दिया है"

कहते-कहते उनके आंसू एक-सौ नवीं बार झर-झरकर गङ्गाके जलमें टपक पडे। अबकी बारके आंसू ज्ञान और आनन्दके ही आंसू थे।

अटूट नाता

कमला,

पिछले सप्ताह, आजके ही दिन बारह वर्ष बाद लखनऊ स्टेशनपर मैंने तुम्हें देखा था। क्या तुमने मुझे पहचाना नहीं ? तुम्हारी दृष्टिसे मैं अनुमान लगाता हूँ कि तुमने मुझे पहचान लिया था, लेकिन तुम्हारे अन्यमनस्क व्यवहारसे सन्देह होता है कि तुमने मुझे नहीं पहचाना। कुछ भी हो इस पत्रको पाकर तो तुम मुझे जान ही लोगी।

तुम्हारी बुआजीके मुँहसे कुछ बार तुम्हारी चर्चा सुन आया था। उनकी सहायतासे ही तुम्हारे सबसे छोटे देवर विनयको पकड पाकर मैं उसीके हाथों तुम्हारे लिए यह पत्र भेज रहा हूँ। इस पत्रको पढते हुए भी शायद तुम्हारी आत्माको डर लगेगा, क्योंकि यह एक पर-पुरुषका—ऐसे पुरुषका जिसके साथ तुम्हारा पहले थोडा-बहुत मन-भीतरका प्रेम भी रह चुका है—चोरीसे भेजा हुआ पत्र है। इसे पढना शायद तुम पाप समझोगी, लेकिन पढे बिना भी नहीं रह सकोगी—मैं जानता हूँ।

इतने दिनों बाद तुम्हें उस दिन देखकर मुझे सुख अधिक हुआ है या दुःख मैं स्वयं नहीं कह सकता। बारह सालमें तुम्हें यह क्या हो गया है ? तुम्हें देखकर अब कौन कह सकता है कि यह २८ वर्षकी एक युवतीका चेहरा है ? जिसने बारह वर्ष पहले खिली कली-सी षोडशी कमलाको देखा होगा वह अचानक तुम्हें कभी नहीं पहचान सकेगा। उस १६ और इस २८ वर्षकी कमलाकी तसवीरें एक सप्ताहसे मेरी आँखोंके सामने झूम रही हैं। केवल अपने हृदयकी प्रेरणासे ही नहीं, कर्त्तव्यके आदेशसे भी तुम्हें यह पत्र लिखने बैठा हूँ, इसलिए क्षमा-याचनाका-सा कोई विचार मेरे मनमें नहीं है।

तुम्हारा सोलह वर्षकी आयुका वह पूरा फोटो मेरे पास सुरक्षित है—

थे। बालक किशोरके मस्तकपर हाथ रखते हुए साधुने उनसे ही कहा था "इसे आप ले आये। यह मेरा राजा बेटा है।"

हरसहाय बाबूको अब लगा कि सचमुच पिछले जन्ममें वह साधु उनका पुत्र और किशोर उनका पौत्र था। कुछ देर बाद जब उनका भावावेश शान्त हुआ; उन्होंने गङ्गाका जल उसी लिफाफेपर लेकर उसे माथेसे लगाते हुए कहा

"गङ्गा माता, तेरा सन्देश मेरे हृदय और आँखोपर है। तूने आज मेरे अज्ञानको धोकर मेरा दु ख-दर्द भी बहा दिया है"

कहते-कहते उनके आँसू एक-सौ नवीं बार झर-झरकर गङ्गाके जलमें टपक पडे। अबकी बारके आँसू ज्ञान और आनन्दके ही आँसू थे।

अटूट नाता

कमला,

पिछले सप्ताह, आजके ही दिन बारह वर्ष बाद लखनऊ स्टेशनपर मैंने तुम्हें देखा था। क्या तुमने मुझे पहचाना नहीं? तुम्हारी दृष्टिसे मैं अनुमान लगाता हूँ कि तुमने मुझे पहचान लिया था, लेकिन तुम्हारे अन्यमनस्क व्यवहारसे सन्देह होता है कि तुमने मुझे नहीं पहचाना। कुछ भी हो इस पत्रको पाकर तो तुम मुझे जान ही लोगी।

तुम्हारी बुआजीके मुँहसे कुछ बार तुम्हारी चर्चा सुन आया था। उनकी सहायतासे ही तुम्हारे सबसे छोटे देवर विनयको पकड पाकर मैं उसीके हाथो तुम्हारे लिए यह पत्र भेज रहा हूँ। इस पत्रको पढते हुए भी शायद तुम्हारी आत्माको डर लगेगा, क्योंकि यह एक पर-पुरुषका—ऐसे पुरुषका जिसके साथ तुम्हारा पहले थोडा-बहुत मन-भीतरका प्रेम भी रह चुका है—चोरीसे भेजा हुआ पत्र है। इसे पढना शायद तुम पाप समझोगी, लेकिन पढे बिना भी नहीं रह सकोगी—मैं जानता हूँ।

इतने दिनो बाद तुम्हें उस दिन देखकर मुझे सुख अधिक हुआ है या दुःख मैं स्वयं नहीं कह सकता। बारह सालमें तुम्हें यह क्या हो गया है? तुम्हें देखकर अब कौन कह सकता है कि यह २८ वर्षकी एक युवतीका चेहरा है? जिसने बारह वर्ष पहले खिली कली-सी षोडशी कमलाको देखा होगा वह अचानक तुम्हें कभी नहीं पहचान सकेगा। उस १६ और इस २८ वर्षकी कमलाकी तसवीरें एक सप्ताहसे मेरी आँखोके सामने झूम रही है। केवल अपने हृदयकी प्रेरणासे ही नहीं, कर्त्तव्यके आदेशसे भी तुम्हें यह पत्र लिखने बैठा हूँ, इसलिए क्षमा-याचनाका-सा कोई विचार मेरे मनमें नहीं है।

तुम्हारा सोलह वर्षकी आयुका वह पूरा फोटो मेरे पास सुरक्षित है—

वही जो प्रिय मोहनने वडे दर्पणमे तुम्हारे प्रतिविम्बका मेरे लिए चुपचाप खीचा था। उसकी एक प्रति बादमे तुम्हें भी दी गयी थी। उन दिनो तुम्हारे पिताजी मेरे साथ तुम्हारे विवाहकी बात-चीत कर रहे थे। तुम्हारा रूप-रग उन दिनो कितना निखरा हुआ था, तुम्हे याद होगा। होठोकी मुसकान और आंखो की भावुकता-भरी चचलताको घडी-भरके लिए भी दूर रखना तुम्हारे लिए कठिन था। अपने भरे हुए रूपके आकर्षणमे तुम अपरिचित नही थी। तुम्हारे पिताजीने मेरे साथ तुम्हारे विवाहकी बात चलायी और उन्ही दिनो पडोमके कारण मेरा तुम्हारा कई वार साक्षात्कार भी हुआ। सम्भवत विवाहकी सम्भावनासे ही तुमने मुझे मुग्ध आँखोंसे देखा। उस दृष्टिमे यथेष्ट निमन्त्रण था। विवाह तय होनेके बाद तुम्हारे पिताजीने मेरे लिए ऐमी शर्तें रखी जिन्हे मैं स्वीकार नही कर सकता था। अपना देश-सेवाका काम छोडकर मैं सरकारी नौकरी कर लूँ, उनका यह आदेश मैं स्वीकार नही कर सकता था। उन्होने ही अन्तमे मुझे अपनी ओरसे छुट्टी दे दी। तुम्हारा प्रेम-आकर्षण उस समय तक ऐसा नही हो पाया था कि छूटनेसे तुम्हें कोई विशेष कष्ट होता। सम्बन्ध-वार्त्ताके विच्छेदके बाद भी तुम्हें दो-एक वार देखकर मैंने, ठीक ही यह अनुमान लगा लिया था।

तबसे उस दिन तक मुझे तुम्हारा कोई विशेष ध्यान नही था। लेकिन उस दिन लखनऊ स्टेशनपर तुम्हें देखकर मुझे कठिन पीडा हुई। तुम्हारा मुरझाया हुआ चेहरा, चेहरेके भीतर दूर तक धँसी आँखें, चेहरेपर चिन्ता और नीरसताकी रेखाएँ, ढला-सिकुडा शरीर और रुचिविहीन पहनावा? मैं सोचने लगा, तुम्हें यह क्या हो गया?

जिन्हे एक वार किसी भी नाते या बहानेसे प्रेम और आत्मीयताकी दृष्टि से देखा जाये, वे जीवन-भरके लिए अपने आत्मीय ही होते है, मुझे ऐसा ही लगता है और यह एक भीतरी सत्य है भी। तुम्हारा विवाह दूसरी जगह हुआ और मेरा दूसरी जगह और हम एक-दूसरेको भूलकर सुखी भी हो गये, पर इससे हमारे नातेका पूर्ण अन्त नही हो गया। अपने दूसरे मित्रो परिचितो

में, जो मेरे नाते-रिश्तेदार नही है, मेरी जितनी रुचि है उससे कम तुममे, अब तुम्हे देख लेनेपर कैसे हो मकती है ! और फिर तब जब कि तुमने अपने भीतर इतना बड़ा अन्तर पैदा कर लिया है !

जिन अपरिचित लडको और लडकियोसे मेरा विना किसी नाते या विशेष भावनाके, केवल पडोसका ही परिचय हुआ है उनमे-से अधिकाश आज मेरे प्रिय और प्रेमी मित्र हैं । फिर तुम्हारे-मेरे बीच तो बहुत-सी कोमल और मीठी भावनाओंका आदान-प्रदान हुआ है । तुम्हारे-मेरे बीच, सामना होने पर, सहृदय मित्रताके भावका भी न रहना कहाँ तक स्वाभाविक और मानवोचित है ? हमारे समाजके, और तुम्हारे भी कानोके लिए यह बात एकदम नयी और चौंकानेवाली ही होगी । है भी यह बहुत नाजुक, और इससे किसी अच्छाईकी अपेक्षा बुराइयाँ ही अधिक आसानीसे निकाली जा सकती है । पर इस सबकी चिन्ता छोडकर तुम्हारे उस दिनके दर्शनसे मुझे जो पीडा हुई है उसका कुछ उपचार मुझे इस पत्र-द्वारा करना ही है ।

तुम्हारे पतिका स्वभाव बहुत सीधा-सादा और नरम है, उनकी आय, तनख्वाह और किरायोसे मिलाकर, पाँच-सौ रुपया मासिकसे ऊपर है, यह मुझे बुआजीसे मालूम हुआ है । पतिकी कठोरता या खान-पीनेकी कमी तुम्हारी वर्तमान दशाका कारण नही हो सकती । मैंने उनसे यह भी जान लिया है कि तुम्हें किन्ही खास बीमारियोका भी शिकार नही बनना पडा है । तब फिर तुम्हारी इस दशाका कारण क्या है, शायद तुम भी न बता सकोगी । सम्भव है तुम अपनी दशाको उतनी गिरी हुई दशा ही न समझती हो ।

लेकिन मैंने तुम्हारे बारेमें इस एक सप्ताहमे बहुत कुछ सोचा है और उन सोचनेके साथ जो कुछ करनेका निश्चय किया है वह बिलकुल व्यर्थ नही जा सकता । तुम्हें कोई गहरी मानसिक चिन्ता हो, इसकी भी कोई सम्भावना नही है । जो कुछ तुम्हें इस पत्रमें लिख रहा हूँ वह तुम्हारे यौवन-प्रवेशके दिनोंके सर्वथा अनुकूल है । तुममे उन दिनो भरपूर जीवन, तीव्रता, शक्ति और सहानुभूति थी । प्रिय मोहनकी चुनौतीपर मेरे एक छपे हुए लेखकी

कितनी तीव्र और जानदार आलोचना तुमने अपनी कॉपी-बुकमे लिखी थी मुझे याद है। उसमें तुम्हारी अदम्य-सी सजीवताके साथ गहरी प्रशंसाकी क्षमता स्पष्ट झलक आयी थी। उस वर्ष तुम दसवें और अपनी पढाईके अन्तिम दर्जेमे थी। तुम्हारी उसी क्षमता और सजीवताको दृष्टिमें रखकर इस भाषा में मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। मैं यह कह रहा था कि तुम्हें कोई गहरी मानसिक चिन्ता नही हो सकती। तब फिर तुम्हारे इस बूढो-जैसे रूपका रहस्य क्या है? तुम्हें देखकर कोई तुम्हें चालीस-पैंतालीससे कम नहीं कहेगा। तुम्हारे आजके इस रूपका तुमपर बहुत बडा उत्तरदायित्व है। यह किसी कुदशाका फल नहीं, तुम्हारा एक ताजा अपराध है जिसका फल भोगनेका समय आगे कभी आयेगा। मेरी छोटी बहिन—तुमने उसे नही देखा तीस वर्षकी है। उसके तीन बच्चे भी हैं। उसके पतिकी आय इन दिनो दो-सौ से अधिक नही है। लेकिन वह देखनेमें एक अल्हड, सदा प्रसन्न अठारह सालकी लडकी-सी लगती है। कुंवारी नवयुवा लडकियोंके बीच देखकर उसे बहुत-से लोग अविवाहित ही समझ सकते हैं। तुम उससे दो साल छोटी हो। बारह वर्ष पहले जब तुम अविवाहित थी और उसका विवाह हो चुका था, वह तुम्हारी तरह सुन्दर नही थी यद्यपि उन दिनो भी वह हँसमुख तुमसे कम नही थी।

तुम-जैसी जवान लडकियोंको—लडकोकी बात मुझे इस पत्रमें नही कहनी है—जब मैं इस तरह बुढापेके ढांचेमें मुरझायी हुई देखता हूँ तो मुझे दुःख होता है और तुम्हें देखकर तो गहरी पीडा हुई है। हमारे स्त्री-समाजका यह एक व्यापक रोग हो गया है। बीस-बीस पच्चीस-पच्चीसकी लडकियाँ जवान होनेके पहले ही बूढी होने लगती हैं। बीस-पच्चीस नही, सोलह-सत्रह तक की लडकियोका यह हाल मैंने देखा है। वे माँ-बापके घरमें ही बारह सालकी उम्रसे विवाहित-सी होकर रहती हैं—परदेमें, अंधेरेमें दबी-सिकुडी-सहमी शर्मायी-सतायी-सी। घरमे जैसे बचपनसे ही सभी उनके देवर-जेठ और सास-ससुर होते है। यह अभिशाप, जिसकी मैंने ऊपरके वाक्यमें चर्चा की

है,हमारे परिवारोंसे घट चला है, पर अब भी वह बहुत है । तुम्हे बचपनसे ऐसे बन्धन, सिकुडनका शिकार नही बनना पडा फिर भी तुम्हारे इस बाद के परिवर्तनका कारण स्पष्ट है ।

तुम्हारे इधरके दिनोमे केवल एक चीज़की कमी रही है। उस चीज़का नाम है जीवन । व्यावहारिक अभिप्रायके लिए जीवनका अर्थ है, आकाक्षा—सुन्दर होनेकी, स्वस्थ और आकर्षक रहनेकी, प्रसन्न रहनेकी, दूसरोको प्रसन्न रखनेकी, परिस्थितियोका सफलतापूर्वक सामना करनेकी, प्रेम करने और प्रेम पानेकी, प्रभावशाली होने और कुछ उपयोगी काम करनेकी आकाक्षा । ऐसी आकाक्षाएँ तुम्हारे भीतर थी । लेकिन थोडी-सी परिस्थितियोके प्रतिकूल आनेपर तुमने कन्धा डाल दिया और वे धीरे-धीरे तुम्हारे भीतरसे निकल गयी । निकल इसलिए गयी कि निकलते समय तुमने उनपर यथेष्ट ध्यान नही दिया, उन्हे नही रोका । तुम्हारी असावधानी ही इसका कारण हुई । मै अपनी बातको और स्पष्ट करूँगा ।

बारह सालमे तुम्हारे सात बच्चे पैदा हुए हैं । तीन उस दिन मैने तुम्हारे साथ देखे थे । ये सब बातें मैने बुआजीसे मालूम की हैं । सात बच्चे क्यो ? क्या तुम्हें बच्चोसे इतना प्रेम है । सातकी जगह इस समय तक तुम्हारे बारह बच्चे होते तो क्या तुम और भी अधिक सुखी होती ? कभी नही । इस समय तक तुम्हारे अधिकसे-अधिक चार बच्चे होने चाहिए थे । सात बच्चोको तुम ठीक तरहसे खिला-पिला नही सकती, उनकी देख-रेख नही कर सकती । तुम इन कमियोका अनुभव अवश्य करती होगी । अपने पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे बच्चेके लिए तुम्हारे हृदयमें जितना प्यार होना चाहिए उतना नही है । लेकिन इस बातपर तुमने कभी यथेष्ट ध्यान नही दिया । बादके तीन बच्चोके कारण तुम्हारे और बच्चोके स्वास्थ्यमें और पोषणमें बहुत कमी आयी है । लेकिन तुमने इसपर ध्यान नही दिया । तुम इतने बच्चे क्यो पैदा कर रही हो, तुमने ध्यान नही दिया । चार और सात बच्चोकी मौजूदगीमें क्या अन्तर होता है, तुमने ध्यान नही दिया ।

इनकी सख्या कम और सीमित रखना कहाँतक तुम्हारे हाथमे था, तुमने ध्यान नही दिया। उनका स्वभाव और विकास किस दिशामें कैसा चल रहा है, तुमने ध्यान नही दिया। और अब भी तुम्हारे कितने बच्चे और होगे, तुमने ध्यान नही दिया। बच्चोकी आकाक्षा स्त्री-जीवनकी सबसे बडी आकाक्षा है। लेकिन स्वस्थ, सुन्दर, सुविकसित पूर्ण प्रेम-प्राप्त बच्चोकी आकाक्षा तुम्हारे हृदयसे धीरे-धीरे निकल गयी क्योकि तुमने केवल मानसिक आलस्य-असावधानीके वश होकर उसे निकल जाने दिया।

तुम्हारे पहने हुए ब्लाउजके कुछ हिस्सेपर मेरी निगाह उस दिन पडी थी। मुझे मालूम है कि यह रेशमी कपडा १८ रुपये गज़का है। मेरे एक अमीर पडोसीने वही कपडा पिछले महीने खरीदा है। वह नये डिजाइनका नया बना कपडा है, पहलेका रखा हुआ नहीं हो सकता। तुम १८ रुपये गज़का कपडा क्यो पहनती हो? तुम्हारा वह ब्लाउज़ जरा भी सुन्दर सिला हुआ नही है। डेढ रुपये गजको छीटका ब्लाउज़ लगभग उतना ही मजबूत और उससे भी अधिक सुन्दर सिल सकता था। अगर तुम अठारहकी जगह डेढ रुपये गज़का कपडा पहनतीं तो तुमने और तुम्हारे बच्चोंने कुछ अधिक दूध पिया और कुछ अधिक फल खाये होते। लेकिन इसपर तुमने कभी यथेष्ट ध्यान नही दिया। दूध, और फलकी तुम्हें कितनी और आवश्यकता है और यह कितना और तुम्हें सुगमतापूर्वक मिल सकता है, तुमने ध्यान नही दिया। ब्लाउज़की बात केवल एक मोटा-सा उदाहरण है, इसे तुम अपने और अपने बच्चोंके लगभग सभी पहनावोंपर घटा कर देख सकती हो। अपने और अपने बच्चोके लिए हृष्ट-पुष्ट रहनेकी आकाक्षाको भी तुमने अपनी केवल ध्यान न देनेकी असावधानीसे मुरझा जाने दिया।

तुम्हारे पास उस बडी-सी टोकरीमें मोतीचूरके लड्डू भरे हुए रखे थे। उन्हें तुम सम्भवत लखनऊ अपनी छोटी बहिनके घर त्योहारके लिए लायी थी। इन बीस-पच्चीस सेर लड्डुओको तुम्हारे या तुम्हारी बहिनके घर कौन खाना पसन्द करेगा? उन लड्डुओंसे अधिक मीठा और स्वादिष्ट व्यव-

हार क्या तुम अपनी बहिनके घर उतनी फिजूल-खर्चीके बिना नही कर सकती थी ? ऐसे अनावश्यक व्यवहारोमे कोई सुधार या किफायतशारीका परिवर्तन करके अपनी अधिक पहलेकी आवश्यकताओको पूरा करनेकी ओर तुमने ध्यान नही दिया ।

बारह वर्ष पहले तुम्हारा घर तुम्हारी सहेलियोसे भरा रहता था । तुमसे मिलनसारीका गुण विशेष था ! उसे अब क्या हो गया ? क्या अब तुम्हे घर, परिचय या पडोसकी स्त्रियो और लडकियोंसे मिलनेका हौसला नही रहा ? मिलना-जुलना और पारस्परिक स्नेह-सहयोग सामाजिक जीवनका एक बडा सुख है और उस सुखका स्वाद तुमने चखा है । घरेलू झझटो और समयकी कमीने अवश्य ही तुम्हारे उस मिलने-जुलनेमे बाधा डाली है । पैसा, समय और प्रसन्नता, तीनोकी ठीक व्यवस्था और खर्चकी ओर तुमने यथोचित ध्यान दिया होता तो तुम्हारे जीवनमें इतनी कमी न आती ।

मेरा यह पत्र पढते समय तुम्हें स्वभावतया जो डर लगेगा उसका एक इलाज मै अनुरोधपूर्वक तुम्हारे सामने रखूँगा । इसे पढ चुकनेपर तुम इसे सीधे अपने पतिदेवके हाथोमें रखकर कहना 'यह उनका पत्र है जिनसे मेरा विवाह होनेवाला था । पिताजी और हम दोनोने एक दूसरेको पसन्द कर लिया था, लेकिन बादमे पिताजीने कुछ कारणोसे वह विवाह स्वीकार नही किया । यह बहुत भले आदमी है ।' क्या तुम समझती हो कि तुम्हारे ऐसा कहनेपर वह सोचेंगे 'उफ् यह ऐसी स्त्री निकली ! इसने विवाहसे पहले किसी दूसरे व्यक्तिको पसन्द कर लिया था !' अगर वह ऐसा सोचें तो तुम उनसे कहना 'पसन्द और नापसन्द विवाहसे पहले सभी लडकियोमे होती है । यह स्वाभाविक है और व्यवहारमे किसी गलत सीमा तक न जायें तो बुरी नही है । इन्हे पसन्द मैने सिर्फ उसी हालतमे किया था जब कि आपसे विवाहकी बात नही आयी थी और आपको मै नही पा सकी थी ।' इतना बतानेपर वह इस पत्रका, मेरा या तुम्हारा बुरा नही मानेंगे । मै जानता हूँ वह बुरा नही मानेंगे क्योकि मैं उन्हें तबसे जानता हूँ जब

उनकी आयु पांच और मेरी सात वर्षकी थी। हम दोनो साथ-साथ ६ वर्ष तक खेले और पढे थे, यद्यपि यह मैं पिछले सप्ताह ही जान पाया हूँ कि वह तुम्हारे पति हैं। मेरे अबके प्रचलित नामसे वह मुझे जान भी नही सकेंगे, लेकिन बचपनका घरेलू नाम उनके लिए बताना मैं आगे किसी अवसरके लिए ही रख छोडना चाहता हूँ। त्रिभुवननाथका और मेरा नाता पुराना है, तुम्हारा-मेरा भी एक तरहसे कुछ-न-कुछ है ही। जिन लडकियो से मेरे विवाहकी बात-चीत पहले चली है उनमे-से पांच-छहकी और अब तुम्हारी भी बात याद करके मैं सोचने लगा हूँ कि कितना अच्छा हो यदि हमारे परिवारोंमें दूसरे अनेक नातोके बीच एक नाता उन स्त्री-पुरुषो का भी मान लिया जाये जिनके पारस्परिक विवाहकी बात एक हद तक कभी चली हो और चलकर किसी कारणसे छूट गयी हो। ऐसे नातेमें छूटे हुए पुरुषको बहिनके पति और छूटी हुई स्त्रीको पत्नीकी बहिनका दर्जा और उन्हीसे मिलते-जुलते नाम भी दिये जा सकते है। क्या इसे तुम कोई बुरी या अनावश्यक बात समझोगी? हमारा भारतीय स्त्री-समाज परदा-प्रधान समाज है। दीवारका परदा, घूंघटका परदा, आँखका परदा, आवाजका परदा और *विचारका परदा! इन परदोका अर्थ तुमने कभी सोचा है? इनका अर्थ है,* 'मैं स्त्री हूँ तुम पुरुष हो, इसे मत भूलो। मेरा मुख नही देख सकते। तुम मुझे सुन्दर, स्वस्थ, युवा, पिक-बयनी और मृदु-हासिनी समझो। मुझसे कोई दूसरी बात कहने या पूछनेकी आशा मत रखो। मैंने तुम्हारे सम्बन्धमें क्या सोचा है, यह मेरे मुखसे तुम नही सुन सकोगे, तुम मन-ही-मन इसकी कल्पना करो।'

इस परदेको देखकर मै इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि भारतवर्षसे अधिक सेक्स-भावनापूर्ण देश ससारमे दूसरा नही है। पिछली कुछ शताब्दियोसे ही यहाँ परदा-प्रथा चली है। स्त्रियोके लिए परदेकी व्यवस्था बनाकर यहांके पुरुषोने उन्हें बुढापे तकके लिए युवा कर दिया है। परदेके इस पहलूको देखा जाये तो यह व्यवस्था बहुत सुन्दर है। स्त्री पुरुषके सामने अपने-आपको

स्त्रीसे भिन्न, और पुरुष अपने-आपको पुरुषसे भिन्न और कुछ नही सोच सकता। उनमें-से कोई भी नही सोच सकता कि वह पुरुष या स्त्रीके अतिरिक्त मनुष्य भी है, और मनुष्यताके नाते उनका कोई दूसरा भी सम्बन्ध और व्यवहार हो सकता है। लेकिन यह भावना पुरुषो और स्त्रियोको नर और मादाकी, दूसरे शब्दोमे, शरीरत्व अथवा पशुत्वकी भावनाके ऊपर नही उठने देती।

तुम्हें और तुम्हारी-जैसी लड़कियोको स्त्रियोकी अपेक्षा पुरुषोके साथकी अधिक आवश्यकता है, और पुरुषोमें भी परिवारसे बाहरके पुरुषोकी। तभी तुम अपने-आपको मनुष्य समझना और अपने पैरोपर खड़ी होना सीख सकोगी। जीवनकी सामग्री और सुझाव तुम्हे उन्हीसे अधिक मिलेंगे।

तुम्हारा अबका सिकुडा-घुला और कुम्हलाया हुआ शरीर, तुम्हारी जीवन-हीन दृष्टि एक बार फिर, जब कि मैं इस पत्रको समाप्त करनेकी बात सोच रहा हूं, मेरी आँखोके सामने झूम उठी हैं। उन्हे सामने लाते मुझे पीडा होती है। लेकिन तुम्हारी यह दशा कभी भी तुम्हारे हाथसे बाहरकी नही है। तुम्हारा कुछ अधिक अब भी नही खोया है। तुम अपनी वास्तविक दशाकी ओर अभीसे लौट सकती हो। यह असम्भव है कि यह पत्र तुम्हे उसकी ओर कुछ दूर तक एक बार न लौटा लाये। अपने पति और बच्चोंके, मेरे और समाजके लिए तुम्हे यह करना ही होगा। अलग रजिस्टर्ड पैकेटमे एक पुस्तक 'रूप और जीवन' नामकी तुम्हारी भेंट भेज रहा हूं। त्रिभुवन बाबूसे जल्द ही, दो सप्ताहके भीतर ही, इलाहाबादमे मिलूंगा। लिख सको तो उत्तर लिखना।

तुम्हारा
गिरीश

सुनिमन्त्रिता

सुभद्राजी, वन्दे !

उस दिन आपकी चाय-पार्टीसे मैं और मेरी पत्नी वासन्ती एक विशेष विचार लेकर लौटे हैं। उस विचारको आपके सामने ठीक रूपमें रखनेके लिए कुछ थोडी-सी भूमिका बाँधना अनिवार्य रूपमें आवश्यक है, अन्यथा इसी पत्रकी दो पक्तियोमें मैं उसे लिख सकता था।

१४ तारीखको तीसरे पहर यदि आपके पास घण्टे-दो घण्टेका निश्चित रूपसे अवकाश हो, तो मैं उस समय आपके घर आकर बात करना चाहूँगा। लिखिएगा।

वासन्ती पहली ही भेंटमें आपपर मुग्ध है, और उस चायके लिए हम दोनो आपके कृतज्ञ हैं।

१०–५–१९४१]

आपका
अनन्त

●

सुभद्राजी,

उत्तरके लिए धन्यवाद। १३ को या उसके पहले मैं नही आ सकूँगा, कुछ मेहमानोके साथ व्यस्त होनेके कारण। आप १३ की रातको डेढ महीने के लिए मसूरी जा रही है, यह भी अच्छा ही है। मैं भी सोच रहा था कि आमने-सामनेकी अपेक्षा पत्र-व्यवहार-द्वारा ही यह बात-चीत अधिक ठीक रहेगी। आप मसूरी पहुँच कर मुझे अपना पता दें, तभी मैं आपको लिखूँगा।

मेरे पत्रने आप-जैसी शिक्षिता सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्त्री के मनमें कुतूहल उत्पन्न कर दिया है, यह सन्तोपकी बात है। आपके कुतूहलके आगे सम्भवत मुझे आपके रोषका भी सामना करना पडेगा।

वासन्तीके प्रति आपका श्रद्धापूर्ण स्नेह अकारण नही है। वह आपको एक ऐसी वस्तु देना चाहती है, जो आजके सभ्य-युगमे एक नारीकी ओर से दुर्लभ है। विशेष यथासमय।

१२-७-१९४१]

आपका

अनन्त

●

सुभद्राजी,

पत्र मिला। आपके आग्रह-अनुरोधके बिना भी मुझे अविलम्ब इसी पत्र से अपनी बात प्रारम्भ करनी थी। आपने अपने पत्रमें जो केवल एक शका उठायी है, उसका उत्तर देनेका अवसर शायद इस पत्रके अन्तमें नही रहेगा, इसलिए पहले उसीका समाधान कर देना आवश्यक समझता हूँ। आपने लिखा कि जब कि मै आपका 'कृपालु' हूँ और मेरी पत्नी आपको कुछ देना ही चाहती है, तो फिर आप मुझपर रोष क्यो करेंगी? यह बात आपकी समझमे नही आयी। मेरा उत्तर यह है कि आपकी अबतककी सही या गलत धारणा और जानकारीके विपरीत यदि आप मेरी उस कृपालुताको मेरा नीचा और आडम्बरपूर्ण स्वार्थ तथा मेरी पत्नीके देनेको लेना समझने लगें, तो स्वभावतया आपकी श्रद्धा और स्नेह रोषमें बदल सकते हैं। अस्तु।

मेरा-आपका परिचय अभी पाँच-छह वर्षका ही है और उसमे भी हमे किसी विशेष घनिष्ठताके रूपमे एक-दूसरेके समीप आनेका अवसर नही मिला है। आपके पति एक कुशल व्यवसायी थे और वह किसी मित्रता या बराबरीके नही, एक साहित्यकारके नाते ही मेरा कुछ सम्मान करते थे। सयोगवश उनकी मृत्युकी ऐन तीसरी वर्ष-तिथिपर मै यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। आजसे कोई चौदह वर्ष पहले जब मै केवल अँगरेज़ी पत्रोंमें लिखता था और एक अच्छे पत्रकारके रूपमे मेरी कुछ ख्याति भी हो गयी थी, तब मेरा उनका पहला परिचय हुआ था। उस समय मैंने अपनी कलम से उनकी कुछ सेवा-सहायता भी की थी। अच्छे व्यवसायी थे, इसलिए

दुबारा इस नगरमे साथ होनेपर उन्होने उस 'ऋण'को अपनी सत्कार-भावना-द्वारा चुकानेका ध्यान रखा।

इधर दस वर्षोंमे मै अपने उस पुराने उपनाम और उसकी ख्यातिको छोडकर केवल अपनी मातृ-भाषाकी सेवामे सलग्न हूँ। मेरे कम ही नये मित्रोको मेरे उस जीवनका पता है। अब मै अधिक समीपके अर्थोमे एक साहित्यकार हूँ, और साहित्यकारका प्रधान गुण, अपनी आँखोसे देखकर बात कहना, मेरा अग बनता जा रहा है।

तो सुभद्राजी, इधर दस वर्षोंमें मैंने अपनी स्वतन्त्र आँखसे अपने-आप को, दुनियाको और उसी सिलसिलेमे आपको भी देखा है। साहित्यकारके नाते मेरा अधिकार है कि जैसा देखूँ, वैसा कहूँ और मेरा कर्त्तव्य है कि दूसरोको भी प्रेरणा दूँ कि वे अपनी स्वतन्त्र आँखोंसे देखनेका अभ्यास करें। अलबत्ता, मनुष्यताके नाते किसीके सामने ऐसी जबान खोलनेका अधिकार मुझे नही है, जिससे उसे पीडा हो। किन्तु आपके सामने जो कुछ कहने जा रहा हूँ उसे आपके लिए भी अन्त तक पहुँचकर प्रिय और हितकर आँककर ही कहनेका साहस कर रहा हूँ।

आप स्त्री है और इधरके तीन वर्षोंमे आपके प्रयत्नोंके होते हुए भी आपका स्त्रीत्व भीतरसे घट नही पाया है। मै जानता हूँ, अभी आपकी आयु पैंतीस-छत्तीस वर्षकी है। चार वर्ष पहले वसन्तपञ्चमीके दिन आपके घर पहुँचनेपर आपके पतिने मुझे आपकी वर्षगाँठके उत्सवमे सम्मिलित किया था। उसे उन्होने आपकी शायद इकतीसवी या बत्तीसवी वर्षगाँठ बताया था। मुझे इस समय ठीक याद नही। आपके रूप, स्वास्थ्य और नारी-सुलभ आकर्षणको देखते हुए इतनी उम्र आपके ऊपर अधिक नही है। मैने आपकी इन चीजोको आँख भरकर देखा है। शास्त्रोका यह उपदेश—यदि सचमुच वह किन्ही सम्मान्य शास्त्रोका उपदेश हो तो—कि अपनी पत्नी से भिन्न किसी स्त्रीके रूप-लावण्यको न देखना चाहिए, मुझे मान्य नही है। सतीत्व, पतिव्रत और वैधव्य-साधनापर मैने आपके विचार सुने है। पर

मेरा मत है कि आपके वे विचार आपके नही, उस समाजके विचार है, जिसके बीच आप बचपनसे लेकर अबतक पली है। मेरा अनुमान है कि उन बातोपर आपके व्यक्तिगत विचार आपके सामने बहुत धुँधले और अस्पष्ट है, क्योकि आपने कभी उन्हे जाननेका साहस नही किया है। आजके समाजमे मनुष्यके अच्छे-अच्छे विचार प्राय उसकी अन्धी, रूढ धारणाओका ही परिणाम होते है। ईश्वरमें विश्वास, तरह-तरहके धर्मो, व्रतो और लोक अथवा परलोकके लिए कल्याणकारी अनुष्ठानोमें विश्वास मनुष्यकी उन रूढ धारणाके ही रूप हैं। और भारतीय स्त्री-वर्गमें यह सतीत्व, पति-व्रत और वैधव्य-भावनाकी धारणा तो उसकी सम्भवत सबसे अधिक व्यापक रूढ धारणा है। आप हिन्दी और दर्शनमें एम० ए० हैं, इसलिए मै आशा करता हूँ कि आप मेरे इन शब्दोको ग़लत अर्थोमें न ले जायेंगी। मैं यह नही कहता कि ईश्वरका अथवा धर्म-व्रतादिककी उपयोगिताका कोई अस्तित्व नही है, हो सकता है, उनका अस्तित्व हो। मेरा कहना तो केवल यह है कि इनके सम्बन्धमे मनुष्यकी धाराएँ प्राय उसकी विचारहीन रूढ धारणाएँ ही है और वे धारणाएँ स्वतन्त्र आन्तरिक अनुभूतिसे दूर होनेके कारण वास्तविकताके समीप किसी तरह भी नहीं हो सकती।

तब फिर आपके सामने मेरे प्रस्तावका पहला चरण यह है कि आप अपनी वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें अपनी उन धारणाओकी गहराई तक छान-बीन करके देखें कि ये कहाँतक आपके लिए स्वाभाविक, व्यवहारोपयोगी और आपकी आत्म-सम्मत है। ऐसा प्रस्ताव मैं आपके सामने अकारण या किसी छोटे-मोटे कारणसे नही रख रहा हूँ। इसका विशेष कारण आपका पत्र आनेपर अगले पत्रमें लिखूँगा।

२०-५-१९४१]

आपका

अनन्त

सुभद्राजी,

कृपा पत्र मिला। मेरे उस 'लम्बे' पत्रमे आपको कोई 'अच्छी गन्ध' नही मिली, तो वह मेरे अनुमानके बाहरकी कोई बात नही रही। निस्सन्देह मैंने लिखा था कि मैं दो पक्तियोमें अपनी बात लिख सकता हूँ, और आपका अब ऐसा ही अनुरोध है, तो मैं उसका पालन भी करूँगा। मेरी और मेरी पत्नी वासन्तीकी हार्दिक इच्छा, अभिलाषा और आपको निमन्त्रण है कि आप हमारे साथ मेरी द्वितीय पत्नी और वासन्तीकी सपत्नी और हम दोनोंके निकटतम आत्मीय-जनके रूपमें रहना स्वीकार करें।

शायद आप कुछ समय तक मुझ दूसरा पत्र लिखनेका अवसर न दे सकेंगी इसलिए इसी समय अपने इस प्रस्तावका विवरण भी लिखना आवश्यक समझता हूँ। मेरे इस प्रस्तावके आधार-स्वरूप चार कारण मुख्य है

पहला कारण सम्भवत· आपकी ओर मेरा आकर्षण ही है और उस आकर्षणका सूत्रपात उसी दिन हुआ था जब मैंने पहली बार आपको अपने पतिके साथ देखा था। उस समय मैं आपके बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्यका केवल प्रशसक हुआ था और जिस तरहका प्रस्ताव अब रख रहा हूँ, वैसी कोई बात उस समय मेरे मनमे नही आ सकती थी। उस समय आप मेरे एक मित्रकी पत्नी और अनन्य रूपसे उन्हीका भाग थी। लेकिन अब परिस्थिति बदलनेपर मैं आपके प्रति इस तरहकी बात भी सोच सका हूँ। भावुकता, वासना और स्वार्थ मानव-स्वभावके अग है, और इनसे अछूते होनेकी बात मैं अपने लिए नही सोच सकता। लेकिन लौकिक व्यवहार और तदनुकूल स्वस्थ विचारके अनुसार भी एक सीमा तक भावुकता, वासना और स्वार्थका औचित्य है। उस औचित्यको तराजूके हिलते हुए पलरोंमे भी परख लेना मानव-बुद्धिका एक आवश्यक कर्तव्य है।

दूसरा, और एक प्रकारसे सबसे बडा कारण मेरी निर्धनता और आपकी आवश्यकतासे अधिक आर्थिक सम्पन्नता है। आपको अपने जीवन और परिवारके अग रूपमे पाकर मुझे अपनी व्यक्तिगत नही तो साहित्यिक और

सामाजिक साधनाओमे जो सुविधाएँ मिल जायेगी उनकी कल्पनाका इस प्रस्तावमें सम्भवत सबसे बड़ा हाथ है। आप सहज निष्पक्ष भावसे सोच सकेंगी तो इस कारणको भी सदोष न कहेंगी।

तीसरा, और नैतिक रूपमे सबसे अधिक सबल कारण यह है कि मैं आपकी एकाकी, अदम्पति स्थितिको आपके जीवन-विकासके लिए बाधक और अहितकर देखता हूँ। इससे मेरा यह अभिप्राय नही है कि एकाकी, पति-विहीन स्थितिमें आपके तथाकथित चारित्रिक जीवनको कोई खतरा है, या वैसे किसी पतनकी आपके लिए आशका है, कभी नही! हो सकता है कि वैसी कोई कामना आपके शेष जीवनमें आपके सामने अब प्रकट न हो और उसे उठानेवाले प्रलोभनका भी कोई अवसर न आये, और यदि आये भी तो आप उसे पराजित कर दें। मेरा अभिप्राय केवल यह है कि इस प्रकारका एकाकी और निषेधात्मक व्रतोंसे पूर्ण जीवन आपके लिए स्वाभाविक और सुख-साध्य नही है, और जो स्वाभाविक सहज साध्य नही है वह आपका स्वधर्म भी नही है। आपकी चेष्टाओमे इस अस्वाभाविकताके खिंचावको मैने देखा है। आप अभी समझती हो या न समझती हो, इस खिंचावमे पीड़ा है और उस पीडाका अहितकर प्रभाव आपपर निरन्तर पड रहा है। मैने आपको इधर अपनी आयुसे बडी दीखनेका प्रयत्न करते देखा है। आपने कभी सोचा है कि ऐसा प्रयत्न आपके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिए कितना घातक है? अपने पतिकी, काल-गतिके अनुसार धुँधली पड़ती हुई स्मृतियोको प्रयासपूर्वक—और आप बुरा न मानें तो मैं बतलाना चाहता हूँ कि आडम्बरपूर्ण प्रदर्शनपूर्वक भी—बाँध रखने और दूसरोंके सामने उनकी चर्चा करनेका प्रयत्न करते मैंने आपको देखा है। यह आपपर पड़ते हुए अहितकर प्रभावका एक अति स्पष्ट लक्षण है। शरीरसे मुक्त अपने स्वजनको भले ही उसके सशरीर जीवनमे आप उसकी पत्नी रही हों—उसके शारीरिक स्पर्शोकी स्मृतियोके नाते याद करना उसका और आत्मिक जीवनकी पवित्रताका निरादर है, उनकी अवहेलना है और आप

देख सकें तो एक अक्षम्य पाप है। अपनी सुन्दर साहित्यिक प्रवृत्तियोंके साथ आपने भारतीय परिवारमें व्यावहारिक सस्कारका जो काम उठाया था उसे छोडकर अनुकरण-मूलक छिछले सामाजिक और राजनैतिक कार्यो-की ओर आपका प्रस्थान मुझे स्पष्ट रूपमे आपका दिग्भ्रम दिखायी देता है। इसमे कुछ रोचक जान पडनेवाली महत्त्वाकाक्षाएँ भले ही आपको दीख पडती हो, पर सन्तोष और प्रगतिका सुख आपसे दूर ही रहनेके लिए विवश है। स्वभावत वैसे सामाजिक और राजनैतिक कार्योका क्षेत्र आपका नही है। धर्मके भय और चरित्रके लोभके कारण दूसरोंके अनुकरणके प्रवाहमे आपने जिस अस्वाभाविक नियन्त्रणपूर्ण जीवन-शैलीको अगीकार किया है वह आपको जीवनकी विकासोन्मुखी सरलतासे दूर, उसकी कृत्रिम फिर भी दुर्निवार जटिलताओकी ओर ले जा रही है। मैं मानता हूँ कि वैधव्य-भावना-का भी विधवा नारीके जीवनमें एक स्थान है, लेकिन यह एक प्रकृति और परिस्थिति-विशेषमें पहुँची हुई नारीके लिए है न कि सभीके लिए।

और अन्तिम, चौथा कारण जो आपके साथ ऐसे पत्र-व्यवहारका मुझे अधिकार देता है, अधिकार ही नही, कर्त्तव्य रूपमें भी ऐसा करनेका आदेश देता है, आपका ही अपने पतिके सामने मुझसे किया हुआ—भले ही यह हृदयकी अधिक गहराईसे किया हुआ न हो—अनुरोध है, "आप इसी प्रकार मुझे सदैव सत्परामर्श देते रहें, आपके परामर्शोको मैं बहुमूल्य सम-झती हूँ।" इसमे 'इसी प्रकार'का सकेत जिस विशेष घटनाके सम्बन्धमे था उसकी याद दिलानेकी यहाँ आवश्यकता नही है।

इन कारणोकी सार्थकता देख लेनेपर आपके सामने जो प्रश्न उठेगा उसका सुविधाप्रद समाधान अभीसे आपके सामने प्रस्तुत करनेके लिए मैंने आपको अपने साथ जीवन-निर्वाहके लिए निमन्त्रण दिया है। धन-सम्पन्न व्यक्तिके लिए दूसरे प्रकारकी सम्पन्नताओको देख पाना कुछ कठिन होता है, फिर भी मुझे आशा है कि विचार करनेपर मुझे अपनी पात्रताके लिए कम नही, कुछ दिशाओसे कुछ अधिक भी देख सकना आपके लिए कठिन न

होगा। मेरे पास धन नही तो उससे आगेकी वस्तु धर्म—धर्म मैं मनुष्यकी व्यक्तिगत सरलता और तदनुकूल व्यवहार-दक्षताको मानता हूँ—है और उनसे भी आगेकी वस्तु सुख और समर्थताकी भी मेरे पास कमी नही है। और यशकी सम्पत्ति मेरे भी पीछे कुछ-न-कुछ चल ही रही है। जहाँतक रूपका प्रश्न है, आप या आपसे भी अधिक सुन्दर किसी महिलाको चाहे वह आपसे भी आयुमे बडी हो, मेरे रूपपर कोई आपत्ति नही हो सकती। सम्भव है समाज-पटुतामे आप मुझे अपने सामने कुछ कम पायें लेकिन यह एक ऐसी कमी है जिसे प्रत्येक समाजपटु प्राणी दूसरेके लिए–अपने निकट-तम स्वजनके लिए भी—पूरा करनेमें गर्व और गौरवका अनुभव करता है, और यदि मेरी वैसी कमीको आपको पूरा करना पडेगा तो उसमे आपको सन्तोष ही होगा। इन सबके ऊपर सुभद्रा रानीको रूखे तर्को और विचारो की भूमिकापर निमन्त्रण देनेवाला यह अनन्त भावुकता और सरसताकी सीढियोपर भी किसी तरह फीका नही दीख पडेगा।

और अन्तमें इस निमन्त्रणकी सबसे बडी बात। आपकी परिस्थितिके समक्ष यह किसी विधुरका नही, बल्कि एक पत्नी-सम्पन्नका निमन्त्रण है, और आपका हाथ मांगनेवाले केवल पुरुषका ही नही, पूरे दम्पतिका निमन्त्रण है। आजके सुशिक्षित युगमे कौन ऐसी नारी है जो अपने पतिके कक्षमे सहज स्नेह-सख्य-भावसे दूसरी स्त्रीका आवाहन कर सकती है? अपनी वासन्तीसे भिन्न मुझे कोई वैसी अभी तक नही दीखी, मैंने बहुत कुछ खोजकी दृष्टिसे चारो ओर देखा है। आपको अभी अनुमान नहीं हो सकता, एक स्नेह-हृदया जीवन-सखीके लिए यह कितनी आतुरता और उदारताके साथ उन्मुक हो उठी है। जो कुछ उसके पास है उसमें दूसरेको हिस्सा बाँटनेके लिए वह कितने उत्साहके साथ तैयार है। वह जानती है कि उसका वह धन बाँटनेसे घटनेवाला नही है। और मेरा दर्शन भी यूँही है कि प्रेम, एक मंजिलके आगे बाँटनेसे घटनेवाला नहीं, बढनेवाला ही होता है। लोक-विदित 'सौतियाडाह'की संकीर्णतासे हमारा नारी-वर्ग अभी तक मुक्त क्यो

नही हो पाया, इसपर मेरी और वासन्तीकी बहुत रस-पूर्ण चर्चा हुई है और मेरा निष्कर्ष है कि उसकी प्रचलित धार्मिकता और चरित्रदारिता ही बहुत अशोमे इसका कारण है। वासन्ती आपपर मुग्ध है और जहाँतक मै आपके अन्तरको देख पाया हूँ, उसकी यह मुग्धता सार्थक है। आपके साथ आ जानेपर वह हमारे सम्मिलित जीवनके कुछ ऐसे विभागोको आपको सौंपने की कल्पना कर रही है जिन्हें वह पूरी सुगमताके साथ अपनी योग्यताओकी सीमामे नही रख पाती।

पत्र पहलेसे भी अधिक 'लम्बा' हो गया है, और इस समय उसको 'न अच्छी' गन्धमे भी कोई परिवर्तन न होकर उसी गन्धका निखार ही सम्भवत आपको गोचर होगा, फिर भी इस पत्रका अन्त अभी कुछ दूर है। मैं समझता हूँ कि मै इस पत्रकी बातें आपको इसी समय नही बल्कि किसी अन्य अवसरपर जब आप शान्त और सहज-भावसे विचार करनेके लिए स्वतन्त्र होगी, और एक बारमें नही बल्कि अनेक बारमे विचार करने के लिए लिख रहा हूँ, और इसीलिए कोई बात शेष नही रहने देना चाहता। पुनर्विवाहके परामर्शको अपने जीवनके स्वाभाविक प्रवाहके अनुकूल पा लेनेपर आपके सामने एक बार और समाजका प्रश्न आयेगा और उस बार वह अधिक उग्र रूपमें आयेगा। आपको लगेगा कि आपके स्वजन-समाजका प्रत्येक व्यक्ति आपकी उपेक्षा, तिरस्कार अथवा विपाक्त दयाकी दृष्टिसे देख रहा है। उस समय आपके सामने दो मार्ग होगे। या तो उस समाजका परित्याग या उसके दिये हुए दण्डकी स्वीकृति। मेरी रायमें यह दूसरा दण्ड-स्वीकृतिका उपाय अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण होगा, क्योंकि आजके जैसे नपुसक समाजके दिये हुए दण्ड और पुरस्कार दोनो ही द्रुत-गतिसे क्षीण होनेवाले है। फिर भी मैं जानता हूँ कि इनमे-से किसी भी मार्गका अनुसरण आपके धैर्य और सहनशीलताकी कठिन परीक्षा ले सकेगा और वह परीक्षा आपको बीचमें विचलित कर दे तो कोई आश्चर्यकी बात न होगी। इसीलिए मै एक तीसरा भी मार्ग आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ और वह यही है

कि आप समाजको अपने इस नये अनुष्ठानमें साक्षी बननेका निमन्त्रण ही न दें। जैसा मैंने कहा, आजका समाज अपनी बाह्य मन स्थितिमें सचमुच नपुंसक है इसीलिए यह प्रकृति और पुरुषके नारी और नरके सहज बन्धनको नही समझ सकता, एक शरीरसे दूसरे शरीरको बाँधने और आजीवन बांधे रखनेको ही वह मानव-मानवीका उच्चतम पवित्रतम प्रणय समझता है। ऐसे अद्रष्टा समाजको यदि हम अपने जीवनके गुह्य कक्षोमे साक्षी बननेके लिए न बुलाये तो यह कोई अनाचार नही है। समाजकी दृष्टिमे हम पति-पत्नी नही, मित्र-मित्रके रूपमें रह सकते है। इसपर भी समाज अपनी कल्पनाओ-द्वारा हमारे सम्बन्धपर उँगली उठायेगा, लेकिन उसका हम बडी सरलताके साथ उत्तर दे सकेंगे। वास्तवमें समाजको हमारी किसी भी सचाई और पवित्रताकी नही, हमारे प्रदर्शनो और मुखसे कहे शब्दोकी ही चिन्ता है।

आपके अभी तक कोई सन्तान नही है। मै समझता हूँ कि आगे भी आपको उसकी कोई लालसा न होगी। मातृत्व स्त्रीकी एक अति सुखद पूर्णता है, फिर भी मेरा अनुमान है कि वैसी पूर्णता आपकी जीवन-धाराके अधिक अनुकूल नही है। हम आपकी आवश्यकतानुसार आपके पुत्रवती या निस्सन्तान रहनेकी व्यवस्था रख सकते है। और फिर आप जानती है वासन्तीके एक पुत्र है, आपकी सन्तान भी यदि हुई, कुछ समयके आवश्यक प्रबन्ध-द्वारा उसीकी सन्तान कहला सकती है।

हमारा यह विवाह यदि हुआ तो क़ानूनकी और राज्यके साम्पत्तिक विधानकी दृष्टिमे उसकी क्या स्थिति होगी मैं नही कह सकता। वह जो कुछ भी हो हमे उसकी कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता न होगी। क्योकि वे सब विधान हमारे पारस्परिक सम्बन्ध और हमारे सह-जीवनकी प्रगतिमे बाधक नही हो सकेंगे।

मुझे स्पष्ट भय है कि मेरा यह तीसरे मार्गका सुझाव आपको एक अति अनैतिक पाप और चोरी प्रतीत होगा और एक बार मेरे प्रति आपकी

आशकाओंको बढानेमें भी सहायक होगा। मैं कुछ और भी स्पष्टीकरण द्वारा उसका यथोचित समाधान इसी समय कर सकता हूँ पर अभी करना नही चाहता। वह यथासमय स्वय आपके सामने प्रस्तुत होगा।

अन्तमें इस लम्बे पत्रको मैं इसी आशा और आशीषके साथ समाप्त करता हूँ कि इसमे निहित स्वार्थ और परार्थ, निम्नता और उच्चता, धर्म और अधर्म, छल और सरलताको यथार्थ रूपमें देखकर आप अपने त्याज्य और ग्राह्यका निश्चय करनेमें सफल हो।

२६-५-१९४१]

सादर आपका

अनन्त

●

सुभद्राजी,

कृपा-पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे इतनी जल्द आपका पत्र पानेकी आशा नही थी। मेरे पिछले पत्रसे आपके हृदयको जो आघात पहुँचा है उसका दु ख होते हुए भी मुझे कोई विशेष चिन्ता नही है, यह मेरे पूर्ण अनुमानके वाहर नही है। मैंने केवल स्वार्थकी नही कर्तव्यकी भावनासे प्रेरित होकर वे पत्र आपको लिखे है। इन पत्रोंको लेकर मुझपर मानहानिका दावा किया जा सकता है या नही यह मैं नही जानता। इस विषयमें कोई वकील ही आपको ठीक सलाह दे सकता है। फिर भी मेरा विचार है कि आप वैसी सलाह लेनेमें जल्दी न करें तो अच्छा है।

३-६-१९४१]

आपका

अनन्त

●

सुभद्राजी,

'भारतीके उज्ज्वल साहित्यकार श्री अनन्त कृष्णाकर' की चवालीसवी वर्षगांठपर श्रद्धा-उपहार-स्वरूप उसके और उसकी पत्नी वासन्तीके नाम भेजा हुआ आपका बीस हजार रुपयेका चेक उसे साभिवादन स्वीकार है।

उनका अनुमान है कि अठारह महीनेके मौनके पश्चात् आपके इस उदार श्रद्धा-उपहारका आगे भी कुछ और अर्थ है। आप इसका स्वय कुछ स्पष्टीकरण करेंगी या उसे ही अपना अर्थ लगानेकी अनुमति देंगी ? वह और वासन्ती आपके लिए पूर्ववत् अपरिवर्तित है।

२-१-१९४३]

आपका

अनन्त कृष्णाकर ही

× × ×

गगा तटपर ऋषीकेशके उस सुन्दर सुसज्जित भवनमे हमारी उस सप्ताहकी आतिथ्यकर्त्री श्रीमती सुभद्रा कृष्णाकरने ऊपर लिखे छहो पत्र स्वय पढकर सुनानेके पश्चात् अपनी स्वभाव-सिद्ध सरल मुसकानके साथ मुझे सौंपते हुए कहा

"आपको मैंने एक सहृदय और समझदार साहित्यकार पाया है और आपकी पत्नी भी सब प्रकारसे आपके अनुरूप है, इसलिए मै ये पत्र आपके हाथो सौंपती हूँ। आप इनका यथोचित उपयोग कर सकते हैं।"

सुभद्राजी अपनी सपत्नी वासन्तीके साथ अधिकतर अपने इसी भवन मे रहती है। उनका पारस्परिक स्नेह-व्यवहार असाधारण है। इसमे अधिक हाथ मुझे सुभद्राजीका ही प्रतीत हुआ। सुभद्राजीकी आयु इस समय पैंतालिस वर्षकी है पर वह उससे पन्द्रह वर्ष कम दीखती है। उनके पति श्री अनन्त कृष्णाकर उस समय दक्षिण भारतके दौरेपर गये हुए थे। ये दोनो ही बहुधा अपने पतिके साथ यात्राओंपर जाती है। सुभद्राजीने बताया कि कृष्णाकरजीका वह अन्तिम पत्र पाकर यह स्वय उनके पास गयी और उस दम्पतिको केवल एकान्त अग्निकी साक्षीमे उन्होने वरण किया। उन्होने स्वीकार किया कि इस विवाहके दो वर्ष पश्चात् तक उन्होने समाज के सामने इसे प्रकट करनेका औचित्य नही देखा और दो वर्ष पश्चात् जब वे अपना सुदूरका नगर छोडकर ऋषिकेशके इस नव-निर्मित भवनमे आकर बसे तभी लोगोने उन्हे पति-पत्नीके रूपमें जाना। उनके घरमे हमने दो

बच्चोकी भी मित्रता प्राप्त की   एक चौदह वर्षका बालक और दूसरी पाँच वर्षकी बालिका। बहुत पूछने और पता लगानेपर भी सुभद्रा और वासन्ती के विनोदपूर्ण हठके कारण हम यह नही जान सके कि वे दोनो वासन्तीजी की ही सन्तानें थी या उनमें-से एक सुभद्राजीकी थी।

अनुरागकी रेखा

प्रिय

कल हम लोग मसूरीसे लौट आये है। राजीव वहाँ बराबर अस्वस्थ रहा और राधा उससे भी अधिक अन्यनमस्क। प्रवासकी सरसतामें कमी रही और इसीलिए मैने अपना काम निश्चितसे दूना कर लिया—एककी जगह दो उपनिषदोके अनुवाद पूरे हो गये। राजीवका नजला पिछले सप्ताहसे कुछ सम्हला है। यहाँ काफी पानी बरस गया है और मौसम अच्छा है।

तुम नही आये, इसकी मुझे कोई शिकायत नही, लेकिन वहाँ आनेका तुमने वचन दिया उससे अवश्य हम सभीको कुछ असुविधा हुई। इस 'हम'मे मै तुम्हें भी सम्मिलित कर रही हूँ। मैं जानती थी कि तुम्हारी वह स्वीकृति कठिन द्विविधा और अस्थिर निश्चयपर आधारित थी और इसीलिए मसूरीमे तुम्हारी विवशताका तार पानेपर मुझे कोई आश्चर्य नही हुआ। उसका मुझे पहलेसे ही अनुमान था। फिर भी यदि तुमने वह निश्चय न किया होता तो जो बात मै आज तुम्हे लिखने बैठी हूँ वह दो महीने पहले यही तुम्हारे सामने स्पष्ट कर देती। व्यर्थका मानसिक भार मुझे इतने दिनो न ढोना पड़ता और अपने दो प्रियजनोको अन्धकारमें दीपकका एक हलका, फिर भी स्वीकार्य प्रकाश दिखानेका सन्तोष भी सम्भवत मुझे पहले ही मिल जाता।

जो बातें मै आज तुम्हे लिख रही हूँ उन्हें मैंने तुम्हारे प्रस्तावित मसूरी के सह-निवासवाले सप्ताहमें कहनेके लिए रख लिया था। तुम मसूरी आने की बात न कहते तो मै यही एक दिन तुम्हें और रोक कर सब कह देती। उतना और रुक लेनेमे तुम्हे उस समय कोई बाधा नही थी।

तुम्हारा हो या न हो, किन्तु मेरा यह सौभाग्य ही था कि तुम तीस वर्ष बाद मेरे नगरमे मुझे मिल गये और मेरे घर ठहरनेका निमन्त्रण तुमने

स्वीकार कर लिया। तुम मेरा निमन्त्रण सहज ही स्वीकार कर सके, क्योंकि मैं तुम्हारे वर्षोंके सहपाठी और बाल्यावस्थाके सुहृद्‌की बहिन थी और उस नाते तुम्हारी भी स्वजन थी। किन्तु मेरा-तुम्हारा साक्षात् मिलन तीस वर्ष पहले तुम्हारी आयुके तेईसवें वर्षमे केवल बारह दिनके लिए हुआ था। मैं तुम्हारे घरके सामनेवाले अपनी मामीके घरमे अपनी मांके साथ उनकी अतिथि होकर ठहरी थी। पहले ग्यारह दिन तक मेरा-तुम्हारा वह सम्पर्क केवल आँखोका ही सम्पर्क था, और अन्तिम बारहवें दिन मेरे-तुम्हारे बीच कुछ शब्दो और कुछेक वस्तुओका भी आदान-प्रदान हुआ था। वही उस सम्पर्ककी पूर्णाहुति थी। पिछली बार मिलनेपर मैने उन दिनोके उस परिचयकी ओर कुछ सकेत किया था और मुझे प्रसन्नता हुई थी कि तीस वर्ष पुरानी उस घटनाकी याद तुम्हें भूली नही थी।

उन दिनो मैं बहुत भावुक थी, जैसी नये तारुण्यके दिनोमे प्राय सभी सुन्दर समझी जानेवाली लडकियां होती है। अनुरक्तिका समर्पण मेरी आंखोमे छलकता था किन्तु अपात्र-सुपात्रकी भी टोह मुझे बराबर थी। अनुरक्तिकी अनुभूतिमे उस बचपनकी-सी सीमाएँ-सवेदनाएँ अब मेरी नही है, फिर भी इन शब्दोको लिखते समय मै ठीक उन्ही दिनोकी सरस विवशतामयी भावुकतामें कुछ क्षणोके लिए पुन प्रवेश कर सकती हूँ। तारुण्य और बचपनकी अनुभूतियोमें जो व्यक्ति उसी चेतनाके साथ पुन प्रविष्ट नही हो सकता, उस चेतनापर श्रद्धा नही कर सकता वह जड और मृत है।

तुमपर पहली दृष्टि पडते ही मैने अपना समर्पण, जिसे तबतक मैने अपनी अञ्जलिसे नीचे नही उतारा था, तुम्हें सौंप दिया। मैने देखा कि जिसकी मुझे आवश्यकता थी वह तुम्ही थे। आंखो-ही-आंखोमे मैने वह सब तुमसे कहा और आंखोसे ही तुमने सुना भी। उस गहरे व्यापारमे शब्दोकी गति नही थी, उनकी आवश्यकता भी नही थी, अतएव यह ठीक भी था कि अवसरके अभावमें मेरे-तुम्हारे बीच उस समय और अगले दस दिन तक एक भी शब्दका प्रयोग नही हुआ।

उन बारह दिनोकी स्मृतियोको निधिकी भाँति सँजोये मै एक युग तक रोयी। अगले दिनोकी पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित होनेवाली तुम्हारी रचनाओने मेरी उस पीडाकी ज्वालाको और भी सजग रखा। ग्लानि, वेदना पश्चात्ताप और आहत अनुरागके तुम्हारे स्वर उनके माध्यमसे मुझ तक पहुँचते रहे, अपने ही व्यवहारके प्रति गहरा क्षोभ और तुम्हारे प्रति अथाह करुणा लिये मेरा हृदय दुस्सह विछोहके हाहाकारमे गलता रहा। किन्तु पीडाका यह असीम दीखनेवाला युग भी धीरे-धीरे समाप्त हो गया। और वह भी कितने स्वल्प कालमे ! मै समझती हूँ अधिकसे-अधिक तीन वर्षके भीतर ही।

तुम्हारी लेखनीने तुम्हारी भावनाओके साथ दिशा बदली। वयके साथ-साथ चिन्तन और मननकी प्रौढताने, सम्भवत धर्म और दर्शनके गूढ अध्ययनने भी तुम्हे उस पीडा-प्रद अन्धकारमें प्रकाशकी ओर खीचा। अपनी वेदनाकी भावुकता और उसके दौर्बल्य-परक आधारको सम्भवत तुमने पहचान लिया। गम्भीरता और बौद्धिकताके साथ व्यावहारिक सत्य एव लोक-मङ्गलके प्रति तुम्हारी आस्था सजग हो उठी। कुछ कुछ ऐसा ही परिवर्तन मुझमे भी आया। मै देखने लगी कि जीवन वास्तवमे भावुकता-की अपेक्षा अधिक कठोर भूमिपर स्थित है। अपनी उन दिनोकी भावुकता को मैं भी पहचानने लगी और उसपर हँस लेनेका सामर्थ्य भी मुझमे आ गया। मैं उस स्थलपर पहुँच गयी जहाँसे तुम्हे विदा दे सकती थी किन्तु कुछ दूसरे आधारोपर मैंने तुम्हें अपने पास ही रखा। यद्यपि यह स्पष्ट है कि तबसे तुम्हारी चेतनामे मेरे लिए कोई स्थान नही रहा। तुम्हारे गम्भीर साहित्यकी पाठिका भी मैं बराबर बनी रही।

मेरे जीवनमें एक नया मोड और आया किन्तु तुम अपनी पूर्व दिशामें ही बढते गये। तुम्हारी बौद्धिकता, साधुता, कर्मठता प्रखरतर होती गयी। तुम्हारी योजनाओ, भाषणो और वक्तव्योने समाजका नेतृत्व किया। साहित्य और समाजके साथ-साथ राजनीतिके क्षेत्रने भी तुम्हे अपना लिया।

दूसरी प्रवृत्तियोके प्रति उदासीन और इस प्रकार उनसे विलग नही हो गये हो ? लक्ष्यके प्रति अपनी आस्थामे तुम किसी जडता, अत्याशा और अत्याङ्कनका पुट नही देखते ? उसकी सार्थकतामे तुम्हारा विश्वास क्या अन्ध-विश्वासकी सीमाको नही छूता ? जबतक तुम्हारे बोये खेतमे बाले लगे और पकें तबतक मनुष्यकी भूख और भूखकी परिस्थिति कुछ बदल जाये, क्या इसकी सम्भावना तुम कुछ देख सकते हो ?

मै यह नही कह रही कि तुम्हारी राह गलत है। मेरा कहना केवल यह है कि जिस परिवेष्टित अनन्यताके साथ तुम उसपर बढ रहे हो वह कुछ प्रश्नोके उत्तर चाहती है। तुम्हारी प्रगति सम्मान्य गम्भीरताके पहरोमे चल रही है तो क्या जीवनमे उन्मुक्त उत्फुल्लता और निश्चिन्तताका कोई स्थान नही है ? जिस पूर्ति और सहयोगको तुम इतनी दूर खोज रहे हो क्या वे आज भी दृश्य और अदृश्य रूपमे मानवीय जीवनसे सटे हुए नही चल रहे है ? अपने पडोसकी सुन्दर वनस्थलीमें, उसके अचलमे बहती सरिताके प्रवाह से, पक्षियोंके सान्ध्य कलरवमे, शिशुकी स्नेहिल मुसकानमे और किसी तरुण की ओर लगी नव-तरुणीकी मुग्धा चितवनमे क्या तुम जीवनको अति निकट नही देखते ? नही देख सकते ? इनके प्रति अब भी तुम्हारी आँखें बन्द नही है किन्तु तुम्हारी यह गम्भीर अनन्यता उन्हे तुम्हारे दृष्टि-पथसे हटानेका ही अभ्यास है। यह अभ्यास तुम्हारे लिए उत्तरोत्तर सुगम होता जा रहा है, किन्तु ऊपरी सतहोपर ही। जीवनकी मृत्युवत् जडता और सजीव प्रवाह-शीलताका तुम्हारे भीतर कठिन सग्राम चल रहा है और तुम्हारी चेतनाके भीतरी अज्ञात तलोपर ही उसकी उग्रता देखी जा सकती है। किन्तु वहां तक तुम्हारी दृष्टि नही जाना चाहती।

भीतरकी बात तुम्हारी दृष्टिसे दूर हो सकती है, किन्तु बिलकुल ऊपर, तुम्हारे सामनेकी दीवारपर जडे हुए दर्पणमें भी क्या तुम अपने लिए कोई सन्देश नही पढ पाते ? बचपनसे ही तुम्हारे सौन्दर्यमें आकर्षण रहा है और वह अब भी है। अनेक मुग्धा बालाओंकी दृष्टियां तुमने अपने मुख

पर झेली होगी । पहली बार तुम्हारे घरपर तुम्हारी बाईसवी वर्षगाँठके दिन मैने तुम्हें पास-पडोसकी अनेक बालाओंके बीच देखा था और कुछ समयके लिए उस दिन मै भी उन्हींमें-से एक थी । उन दिनो तुम्हारी आँखोमें जो कुछ था उसे ढकनेकी साधना तुमने आगे चलकर शीघ्र ही प्रारम्भ कर दी होगी । यह मैं देख सकती हूँ किन्तु क्या उसे तुम अपनी आँखोकी पृष्ठभूमिसे निकाल देनेमे सफल हुए हो ? वह तो अब भी वही है । अपनी नही तो दूसरोकी सुरक्षा और शान्ति, दूसरोके सम्मान और सत्कारके लिए तुम्हे अपने दर्पणके इस सन्देशको ईमानदारीके साथ पढ लेना चाहिए । तुम्हारी आँखोका निमन्त्रण गहराइयोमे जाकर विलीन नही हुआ, और भी सबल हो गया है । क्या इसका तुम्हें पता नही ? अपने सघर्षोकी विफलता क्या तुम्हें किसी भी स्तरपर भासित नही है ? तीस वर्ष पूर्व मेरे प्रति तुमने जो अपराध किया था, मुझे भय है, उसे ही न्यूनाधिक मात्रामे अनेक दूसरोके साथ बराबर दोहराते आये हो । और अब फिर तीस वर्ष बाद तुम मेरे समीप आकर, मेरे आँगनमें, उसी अपराधकी पुनरावृत्ति करना चाहते हो ? यह नही होने पायेगा । आज मै तुम्हारे विगत अपराधका दण्ड देनेकी स्थितिमें हूँ । तुम्हारे दिये उस आघातको मैं अपने लिए वरदान बनानेमे सफल हुई हूँ, उस नाते कुछ पुरस्कार भी दे सकती हूँ । ये दोनो ही तुम्हे मेरे हाथो ग्रहण करने है ।

क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे और राधाके बीच उठे भावोको मैने नही जाना ? तुम्हारी टकराती हुई आँखोकी भाषाको नही समझा ? यह ठीक है कि तुम ओट होते ही उसे भूल गये होगे, पर वह तुम्हे नही भूली । भूलनेके तुम्हारे पास अनेक साधन है—तुम्हारी सम्मान्यता, लोक-सेवामें तल्लीनता, नैतिकता, लोकमतकी प्रतिष्ठा, और सबसे बढकर अशुभ और शुभ, चचल और स्थायी, वासना और प्रेममें भेद परखनेवाला तुम्हारा बौद्धिक विवेक । किन्तु राधाके पास ये साधन नही है । वह सरल और निरस्त्र है । तुम एक प्रौढ पुरुष हो और वह केवल एक नवयुवती, यह

तथ्य भी उसकी गणनासे बाहर है। तुम्हारे जिन गुणोंपर वह आकृष्ट हुई है वे तुम्हारे बाह्य रूपके भी है, किन्तु विशेषत अन्तस्के ही है। आंखोकी यह लगन—यदि वे आंखे तरुण हो—क्या केवल भावुकता, चञ्चलता, दुर्बलतामात्र होती है? क्या ऐसी लगन प्रौढ, वय-वृद्धि प्राप्त आंखोंके भीतर से भी किन्ही अनियन्त्रित क्षणोमें नही झाँक उठती? तुम किस कसौटीपर परखते हो कि यह 'भावुकता' निरर्थक, नश्वर है और तुम्हारी विरसतावादी बौद्धिक मान्यताएँ सार्थक एव चिरस्थायी है? आंखोका यह निमन्त्रण क्या शाश्वत नही है? क्या यह अगली किसी शताब्दी या सहस्राब्दीमे प्रतिपादित बौद्धिकताके विकासके फलस्वरूप समाप्त हो जायेगा? मानवीय विकासके प्रेरक साहित्य और कला सौन्दर्य और आकर्षणकी ही गहरी नीवपर खडे है। वह मानवीय सौन्दर्य आकर्षण क्या किसी एक स्तरपर ही ठीक और दूसरोपर असगत है?

इन प्रश्नोके ठीक उत्तर खोजनेमें सम्भव है तुम्हे अधिक समय लगे, इसलिए मेरा एक अनुरोध है। ये प्रश्न इस समय तुम्हारे लिए तात्कालिक महत्त्वके है, इसलिए और भी अपने हृदयको तुमने तपाये हुए सस्कारोंसे मढ लिया है, किन्तु यदि मेरा यह अनुरोध उसके किसी भी 'असस्कृत' अछूते कोनेकी पुकारके अनुकूल हो तो इसे स्वीकार कर लेना, मेरी यह विनय है। विनय ही नही, यही वह पुरस्कार और दण्ड भी है जो मै तुम्हे देना चाहती हूँ। राधाको मैंने अपनी बच्चीकी तरह पाला है। तुम्हारे प्रति उसका आकर्षण, पहले चरणमे स्वभावतया पुरुषके प्रति नारीका आकर्षण है, किन्तु वह निश्चय ही, स्त्री-पुरुषकी दैहिक सीमाओमे सीमित नही है। राधाको मै जानती हूँ और उसपर श्रद्धा करती हूँ। जिन सलग्नताओ-द्वारा तुमने अपनी हार्दिक अतृप्तिके घावोंको ढका है वे केवल निषेध और पलायनकी साधनाएँ ही रही है। बाहरसे ढककर तुम्हारा वह व्रण भीतर-ही-भीतर फैला है। सावधान होनेपर तुम स्वय इससे इनकार नही कर सकोगे। तुम्हारी सेवा, उपचार और सुरक्षाके लिए राधाके पास बहुत-कुछ

है। आवश्यक है कि तुम उसे अपने साहचर्यके लिए स्वीकार करो। वह तुम्हारी औषधि है। मैं विवाहको बात नहीं कह रही हूँ। परिस्थितिके अनुसार आवश्यक हुआ तो उसकी बात भी किसी समय सोची जा सकती है। यद्यपि ऐसी बात समाजकी बहुत छिछली आलोचनाओं और माँगोंके उत्तरमें ही सोचनी पड़ती है समय आयेगा कि समाज इनसे ऊपर उठेगा। नारीकी जिस सहस्राब्दियोंसे सुरक्षित परतन्त्रताने अधिकार-परक वैवाहिक संस्थाको जन्म दिया उसका विष अब पक गया है, फिर भी उसके सामूहिक उपचारका समय अभी दूर है। और फिर इस प्रश्नको लेकर समाज की जो बात तुम्हारे मनमें उठेगी क्या वह वास्तवमें समाजकी ही बात होगी ? क्या वह तुम्हारे ही मनकी एक प्रतिबन्ध-परक द्विविधा, लोकापवादके प्रति तुम्हारा ही भय, और छिछली लोक-प्रतिष्ठाके प्रति तुम्हारा ही मोह न होगा ? समाजको तुम्हारी सम्भवतः इतनी चिन्ता न होगी जितनीका तुम अभी अनुमान करोगे। अपने सहज, स्वतन्त्र आचरण द्वारा ही तुम समाजके और समाज तुम्हारे कृत्रिम बन्धनोंसे मुक्त हो सकेगा। इन नये परिवर्तनके पश्चात् तुम्हारा और समाजका जो नाता जुड़ेगा वही वास्तवमें हितकर होगा। इसलिए मेरी योजना है कि राधा अगले मास तुम्हारे पास पहुँच जाये, या यदि तुम ठीक समझो तो हमारे चित्रकूटके घरको केन्द्रीय आवास बनाकर साथ-साथ अपना पर्यटन-कार्य करो। उसका सम्पर्क निश्चय ही तुम्हें और इसीलिए तुम्हारे कार्यको भी आवश्यक जीवन दे सकता है। और तुम्हारे पास भी राधाके लिए उपयुक्त, सन्तुलित हार्दिक बौद्धिक विकासका आहार भरपूर है और तुम दोनों एक दूसरे के पूरक हो।

नारी पुरुषसे सात वर्ष बड़ी होती है। आयुमें केवल दो वर्ष छोटी होने के नाते मैं तुमसे पांच वर्ष बड़ी हूँ। इसीलिए इस भाषाका मैंने इस पत्र में प्रयोग किया है। और चिन्तनकी जिस सर्वाभिमुखी दिशाका मैंने अनुसरण किया है उसके नाते तुम्हें अपने लिए शिशुवत् ही पाती हूँ। राधाको

स्वीकार कर तुम मेरे प्रति तीस वर्ष पूर्व घटित ऋणसे भी मुक्त हो जाओगे, उसके अंकमें आया तुम्हारे सम्पर्कका सुख मेरा भी होगा और मेरे आशीष सदैव तुम्हारे साथ रहेंगे।

साशीष तुम्हारी

सुनीता : सुपरिणीता

सुनीताका शरीर यद्यपि पिछले वर्षोमें काफी तेज़ीसे ढला था, फिर भी उसके विगत सौन्दर्यके लक्षण अब भी विद्यमान थे। कानपुरके एक पुराने गन्दे मोहल्लेमें एक बडे बाडेके भीतर बारह रुपये मासिकका मकान लेकर वह रह रही है। उसका पति एक मिलमें अस्सी रुपये मासिकका क्लर्क है। कुल दो प्राणियोका यह परिवार तीन वर्षसे इस मकानमे रह रहा है, इससे अधिक पडोसी बाडेवालोको उसके बारेमें कुछ ज्ञात नही है।

'सुनीता देवी'की आवाज़पर वह अपने आँगनसे निकलकर बाडेके बडे आँगनमे आयी। सुपरिचित डाकियेने एक लिफाफा उसके हाथमे रख दिया। पत्र लेकर वह लौट गयी। कोठरीके सामने बरामदेमें पडी चटाईपर बैठकर उसने लिफाफा खोला। 'मेरी मधु।' वह चौंक पडी। अगले ही क्षण चौदह पृष्ठके उस लम्बे पत्रके अन्तपर उसने दृष्टि डाली। वहाँ किसीका नाम नही था। पत्रके आरम्भमे किसी स्थानका नाम और तारीखका अकन नही था। उसने एक लम्बी साँस खीची और पत्र पढने लगी। पत्र था

मेरी मधु,

इस नामके सम्बोधनसे तुम चौंकोगी। पत्रके ऊपर स्थानका नाम और अन्तमे लिखनेवालेके हस्ताक्षर तुम्हे नही मिलेंगे। किन्तु जब तुम पूरा पत्र पढ चुकोगी तो देखोगी कि उनकी आवश्यकता नही थी।

यह उस व्यक्तिका पत्र है जिसने इक्कीस वर्ष पूर्व पहली बार तुम्हें देखा था और तबसे बराबर तुम्हारी छायाके साथ है। अपने सबसे पहले प्रेमीकी तुम्हें याद होगी। तब तुम पन्द्रह वर्षकी एक खिलती हुई कली थी और वह बीसका एक आकर्षक तरुण। तुम्हारे कस्बेमे वह तुम्हारे किसी नातेदारके घर आकर एक महीने रहा था। उसके प्रति तुम्हारा आकर्षण

तुम्हारे जीवनका सबसे पहला प्यार था। उसके बाद जो प्रेम-सम्पर्क तुम्हें मिले उनमे-से किसीको भी फिर तुम उतना मधुर और मादक कह सकती हो ? वह पहला सम्पर्क तुम्हारा सबसे मीठा और मदिर ही नही, सबसे अधिक पवित्र भी था। सम्भव है अगले सम्पर्कोंकी चकाचौंध और रंगीनियोंमे उसकी सरसता तुम्हारी स्मृतिमे फीकी पड गयी हो फिर भी तुम उसे भूल नही सकी होगी। किस प्रकार एक दुपहरीको तुम दोनो कस्बेके देवालयमे एक-दूसरेकी भुजाओंमे बँधे हुए पकडे गये थे ! तुम्हारे सुकुमार शरीरपर पडनेवाले बेंतोकी वह निर्मम बौछार ! चीखो और सिसकियोंके बीच भी निरन्तर अपने प्रेमीपर ही लगी हुई तुम्हारी वह दृष्टि। दृश्य और श्रव्य, तुम्हारे जीवनका वह एक महान् दृश्य था। तुम्हारी और तुम्हारे प्रेमीकी, दोनोंकी ओरसे उसका निर्वाह असाधारण साहस और शालीनताके साथ किया गया था। उसमे अधिक समय नही लगा। तुम्हें घसीट कर घरकी कोठरीमे बन्द कर दिया गया और तुम्हारे प्रेमीको तत्काल बस्तीमे बाहर निकाल दिया गया। तुम्हारे माता-पिताने समझा कि उन्होने तुम्हे एक भयङ्कर पापसे उबार लिया, किन्तु वे नही जान सके कि वे क्या कर रहे हैं। वे नही जान सके कि अपनी प्यारी बेटीके जीवन-पथके लिए एक भयङ्कर गहरे अन्धे गर्तमें ले जानेवाला ढाल वे अपने हाथो खोद रहे हैं। तुम परदो और पहरोमे रखी गयी। किन्तु उनकी कडाई कितने दिन चल सकती थी। वे ढीले पडते ही, सो पड गये। तुम स्वभावतया शीलवती थी, उस आघातने तुम्हे और भी दबा दिया था। माता-पिताकी आशङ्का ढीली हुई। किन्तु तुम्हारी आँखोका समर्पण जो एक बार जाग चुका था, अब सजग ही था। कोई सुथरा, समतल मार्ग न मिलनेपर उसने उस ढाल की ही राह ली। तुम्हारे माता-पिताको तुम्हारे विवाहकी चिन्ता थी, किन्तु उन्हे बहुत-सी बातें देखनी थी। ठीक वरकी खोज बहुत देर-साध्य थी। अपने निकटतम पडोसमें जिन बाहोंका स्पर्श तुम्हे सुलभ हुआ उन्हींका अवलम्ब तुमने लिया। वह तुम्हारे लिए उपयुक्त नही था फिर भी तुम्हारी

नियन्त्रण लगानेकी उसकी कोई इच्छा नही थी। वह तुम्हें अपना मुक्त प्यार और सरक्षण ही देना चाहता था। अलबत्ता वह जानना चाहता था कि बीते दिनो तुम्हारा हृदय कहाँ-कहाँ रहा है। और इस समय भी तो कही अन्यत्र उलझा हुआ नही है। उसकी यह उत्कण्ठा स्वाभाविक थी और उस जानकारीका वह तुम्हारे हित और सुखके लिए अपने सामर्थ्य-भर केवल सदुपयोग ही करना चाहता था। किन्तु इसके लिए उसने जो कुछ किया वह तनिक भी बुद्धिमत्तापूर्ण नही हुआ। उसका अनुमान था कि तुम्हारे बक्सोमे तुम्हारे प्रेमियोके पत्र या कमसे-कम पते अवश्य सुरक्षित होगे और यही कह कर उसने तुम्हारे बक्सोको देखनेका आग्रह किया था। तुम विवश थी। चाबियोका गुच्छा तुमने उसे दे दिया। पत्रोका पुलिन्दा उसने खोज लिया। अपने जीवनकी सबसे बडी मूर्खता और सबसे बडा अपराध उसने शायद यही किया था। पत्रोको बिना देखे अलग रखकर भी उसने आश्वासन और प्रणय-निवेदनके नाते जो कुछ भी किया वह सब उस रात उसकी अन्धी हुई बुद्धिका खेल बन गया। तुम भयभीत हो गयी थी। तुम्हारे पास उसके प्रणयका उत्तर कहाँसे आता। अगले दिन तुम्हारी मायकेके लिए विदा हो गयी। लेकिन पिताके घर भी अब तुम्हारे मनको ठौर नही था। आठवे दिन पिताका घर भी तुमसे सूना हो गया। अबकी बार पिताने भी तुम्हारी अधिक खोज नही की। कलकका टीका मानो अब उनके माथेके रगमें घुल-मिल गया था। चार वर्षके पत्रोके बाद ही तुम्हारे जीवनका नया उग्रतर अध्याय प्रारम्भ हो गया।

इसके लिए उत्तरदायी कौन है? निस्सन्देह हाथ पकडनेवाला तुम्हारा पति भी। उसने अपने समर्थ प्रेमकी बाँह बढाकर तुम्हारे लिए जो नया मार्ग खोला था उसे स्वय ही, अपनी उत्कण्ठा-जनित मूर्खतासे तुम्हें आतकित कर, बन्द कर दिया। सबसे पहली बात जो उसे तुमसे कहनी चाहिए थी उसमें भी वह चूक गया और जो कुछ होना था वह होकर ही रहा। तुम्हारे लिए तुम्हारे माता-पिताने चार वर्ष पूर्व जो सँकरा ढालू मार्ग खोदा था

उनमे भिन्न तुम्हारे लिए कोई गति न रही।

तुम अब अपने पडोसके ही बड़े नगरमे अपने एक प्रेमीके साथ थी। वह सुन्दर और तुम्हारे समस्तरीय समाजकी मापसे अपेक्षाकृत सुशिक्षित और धनवान् था। उसे तुम्हारे रूपकी कदर थी। उसका सत्कारपूर्ण आश्रय तुम्हे मिला। तुम्हारी आँखोने उच्चतर समाजकी नयी रोशनी भी देखी। वह सहज ही तुम्हारी आँखोमे बस गयी। उसे बसानेकी क्षमता उनमे थी। तुम्हारे प्रेमीका वैसा कोई बन्धन तुमपर नही था। तुम समाजमें मिली-जुली और समाज-पटु हो गयी। किन्तु तुम्हारे हृदयमे प्रेमकी प्यास सजग थी और उसकी खोजके लिए स्वतन्त्रता भी थी। प्रेमी तुम्हे अनेक मिले। सोनेकी तुमपर वर्षा हुई। समृद्धिके प्रसाधनोने तुम्हारे रूप और यौवनको निखारनेमें सहायता दी। कितनी ही रगीन रातें तुमने ऊँची अटारियोंके आतिथ्यमे बितायी। रगीनी ही नही, उनमे सरसता भी कही-कही थी। मित्रो-परिचितोंके एक बड़े वर्गमे तुम्हारी माँग बढ चली। अरुणा रानीके नामसे लोग तुम्हें जानते थे, और पीठ पीछे एक अत्यन्त आकर्षक 'सोसाइटी गर्ल'के नामसे तुम्हे याद किया जाता था। अपने आश्रयदाता प्रेमीका आश्रय तुम्हें बराबर प्राप्त था, क्योकि अब तुम सम्पन्न थी और तुम्हारी कमाईका लाभ उसे भी पहुँचता था। इन्ही दिनो तुम्हारे एक बच्ची हुई। किन्तु यह कोई समस्या नही थी। पाँच-छह महीनेके एकान्त विश्रामके पश्चात् तुम फिर प्रकाशमे आयी। वह बच्ची किसी अनाथालयको दे दी गयी। तुमने अपने अभिनयका सूत्र फिर सम्हाल लिया। दो वर्ष और, और तुम्हारे इस समृद्ध जीवनके नौ वर्ष पूरे होते-होते इस अध्यायका भी नाटकीय अन्त आ पहुँचा। वह तुम्हारी आयुका उन्तीसवाँ वर्ष था। अपने एक नये प्रेमी, उस बड़े सेठके पुत्रके साथ पहली ही बार उस रात तुम उसकी नगर-बाहरकी एकान्त कोठीमें थी। सेठ-पुत्रकी वहाँ उसी रात हत्या कर दी गयी। हत्यारेके आनेके पहले और जानेके बाद भी कोई तीसरा व्यक्ति उस कोठी या उसकी बग़ीचोंमें नही था। आतंक और अनिश्चयके आवेगमे तुम वहाँसे पैरो भाग

कर अपने आश्रय-गृहमे जानेके लिए निकल पडी। उसी समय कोठीके सामने सडकपर नगरकी ओरसे आता हुआ एक तांगा तुम्हे मिला। कोचवानके अतिरिक्त केवल एक यात्री उस तांगेपर और था। तुमने तांगेवालेसे स्वय को नगरमे पहुँचानेकी प्रार्थना की और वह यात्री तुम्हें तांगेपर बिठाकर अपनी ही दिशामे ले चला, तुम्हारे उग्र विरोधकी अवहेलना करके भी। उसने तुम्हे बताया कि नगरकी ओर जाना अब तुम्हारे लिए मृत्युकी ओर जाना था। जैसे उसे घटित सारी घटनाका पता था। तुमने उसकी दलील मान ली। छह घण्टेकी दौडके पश्चात् एक रेलवे स्टेशनपर उसने तांगा छोडा और तुम्हें ट्रेनमें बाईस घण्टेका सफर कराकर उस छोटेसे नगरमें तुम्हारे जीवनके तीसरे चरणके लिए तुम्हे पहुँचा दिया। उस व्यक्तिकी याद भी तुम्हे भूली न होगी, यद्यपि यह बहुत स्वाभाविक है कि तुम्हे उसकी शकलका ध्यान न हो। उसने तुम्हारे जीवनको प्राण-सकटसे उबारा था। मृत्युदण्ड नही तो दीर्घ कालीन कारावास तो तुम्हारे निकट आ ही गया था। निस्सन्देह वह तुम्हारा त्राता था और तुम्हारी कितनी भी कृतज्ञता उसके प्रति अधिक नही थी। फिर भी तुमने पहले या पीछे सन्देहकी दृष्टिसे भी उसे अवश्य देखा होगा। तुमने सोचा होगा कि वह हत्यारेके दलका ही कोई व्यक्ति होगा, अथवा दूर नगरकी उस वेश्याके हाथ तुम्हें सौंपकर उसने कुछ धन कमाया होगा। मार्गमे और उस वेश्याके घरसे चलते समय उसने तुम्हारा जो चुम्बन-आलिगन किया था—अपने सकटके सारथीको इतना मूल्य देना तुम्हारे लिए अति नगण्य था इसलिए तुमने उसमे तनिक भी आपत्ति नही की—उससे भी तुमने उसे एक साधारण कामुक व्यक्ति समझा होगा। किन्तु इन तीनोमे-से तुम्हारा कोई भी सन्देह ठीक नही था जैसा कि तुम शीघ्र ही स्वय देख सकोगी।

उस बडे नगरमें अरुणा रानीका वैभवपूर्ण जीवन समाप्त हुआ और इस कस्बेमे शीला बाईके रूपमे तुम्हारे जीवनका तीसरा अध्याय प्रारम्भ हुआ। तुम्हारे नगर-सञ्चित धनका एक सिक्का भी तुम्हारे साथ नही था

तुम्हे केवल यह सूचना देनी थी कि तुम अब वैसी अज्ञात वास छोडकर कही भी मुक्त जीवन बितानेके लिए स्वतन्त्र हो। देखनेकी स्थिरता उस समय तुम्हारे मनमे नही थी, किन्तु यदि देख सकती तो देखती कि उस व्यक्तिके मनमे तुम्हारे लिए गहरे प्रेमका ही कोई सन्देश था। इस घटनाने तुम्हारे जीवनके प्रस्तुत चौथे खण्डका द्वार खोल दिया। तुमने अपने कुछ पूर्व प्रेमियोको पत्र लिखे और उनमे-से एकने, जिसने तुम्हारे यौवन-विलासके चमत्कारवाले युगसे पहले तुमसे प्रेम किया था और जो अपेक्षाकृत एक सरल व्यक्ति ही था, तुम्हारी पुकार सुन ली। अपनी पत्नीकी मृत्युके बाद उसे एक नारीके साहचर्यकी आवश्यकता भी थी। उसने तुम्हे अगीकार किया और पाँच वर्षके उस निर्जीव जीवनके पश्चात् तुम तीन वर्षसे यहाँ इस नगरमे उसके साथ हो—सुनीता।

किन्तु यह जीवन भी अब तुम्हारे लिए दुर्वल हो उठा है। तुम उससे ऊब उठी हो और वह तुमसे। तुम्हारे विगत इतने जटिल इतिहासको जानकर उसके मनमे तुम्हारे प्रति खिन्नता और विरक्तिका उदय और उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हुई है। फिर भी उसमे सौजन्य है और वह रोटी-भरका आश्रय तुम्हे दिये रहना चाहता है। रोटीका महत्त्व अब तुम्हे भी सर्वोपरि दीखने लगा है और तुम चाहती हो कि जबतक जीवन है यह आश्रय बना रहे। जीवनमे तुम्हारी कोई रुचि नही रह गयी है पर मृत्युकी भी कोई कामना तुम्हारे समीप नही है। तुम्हारे-उसके बीच व्यवहारमे जो पारस्परिक खिन्नता और कटुता प्रकट होती है वह पडोसियोकी दृष्टिमे पति-पत्नीका केवल अति सामान्य व्यवहार है। तुम्हारे जीवनका अन्त क्या अब यो ही होगा ?

नही! प्रेमकी जिस पहली हिलोरने तुम्हारे हृदयमे उत्पन्न होकर तुम्हारे जीवनको यह दिशा दी है वह तुम्हे बँधे पानीमे डूबने नही देगी। प्रेम इतना समर्थ और कृतज्ञ है कि एक बार जो उसकी आराधना करता है उससे वह अपनी छाया कभी नही हटाता। तुम्हारा जीवन प्रेमका ही एक

देखते उसे आरामका इससे अच्छा काम नही मिल सकता। वह मैट्रिक भी नही है। इस कामको करते हुए वह अपने भीतरका कुछ बडा काम भी सुगमतापूर्वक कर सकता है।

और अब,—जिसका आभास भी तुम्हें इस पत्रमें उत्तरोत्तर मिलता आया होगा—यह स्पष्ट है कि तुम्हारा सर्वप्रथम प्रेमी, तुम्हारा विवाहित पति, तुम्हारा सकट-त्राता और तुम्हारा परदेशी ग्राहक चार भिन्न नही, एक ही व्यक्ति है। यह आश्चर्यजनक जान पडता है कि जिसे तुमने तीन सप्ताह तक प्रतिदिन बांहो और आंखोमें भर-भरकर देखा, उसे ही केवल चार वर्ष बाद एक रातके लिए पति रूपमे पाकर पहचान न सकी। और आगे भी दो बार कुछ-कुछ वर्षोंके अन्तरसे देखकर पहचान न पायी। किन्तु अस्थिर, आतकित और उद्विग्न मन तथा आंखें पूर्व परिचितको पहचाननेमे चूक जायें तो यह तनिक भी अस्वाभाविक नही। तुमने ऐसी ही स्थितियोमे उसे हर बार देखा और इसीलिए पहचान नही पायी।

उसने तुम्हें प्यार किया था और अपनी विवशताके कठिन क्षणमे ही तुम्हें अपने अटूट प्यारका सरक्षण देनेका मौन व्रत लिया था। उस व्रतने ही उसे प्रेम-पथकी दूसरी सबसे अधिक पवित्र और सुदृढतम दीक्षा लेनेका आदेश और अवसर दिया। समाज अभी नही जानता किन्तु विवाहसे बढ कर इस प्रेम-पथकी दूसरी महान् दीक्षा और क्या हो सकती है? तबसे तुम अखण्ड, अविभाज्य रूपमे उसकी हो, चिरप्रिया, चिरक्षमिता, चिरसरक्षिता। और इस धरतीपर सच्चे पतिसे उसकी पत्नीको दूसरा कौन ले सकता है? कोई भी नही, और यदि ले सकता है तो कोई महत्तर प्रेमी ही ले सकता है, और वह भी विभाजित कर नही, सयुक्त होकर ही ले सकता है। उसका पात्र इतना विशाल होगा कि पत्नीके साथ पतिको भी वह अनिवार्य रूपमे अपने भीतर ले लेगा। और जैसा साधारणतया स्वाभाविक है, उससे अधिक समर्थ कोई दूसरा प्रेमी तुम्हे मांगनेवाला धरतीपर अभी तक नही जन्मा। तुमने लम्बीसे-लम्बी रस्सी ली, किन्तु उसके प्रेम और सरक्षणकी

परिधिसे कभी भी बाहर नही जा सकी ।

और अब वह पुनः तुम्हे अपनी बाँहोंकी परिधिमे भी लेने आ रहा है। वह निरन्तर अपनी तीव्रतम गतिसे तुम्हारी ओर बढता रहा है और जिस क्षण वह तुम्हारे पास पहुँचेगा उससे एक क्षण भी पहले नहीं पहुँच सकता था। उसकी ओरसे ढील नही, परिस्थितिकी दूरी ही इस दीखनेवाले विलम्बका कारण हुई है। तुम इसे स्वय भी देख लोगी। अब शीघ्र ही तुम अपने घरमे होगी। ग्यारह वर्षकी वह बच्ची तुम्हारी गोदमे होगी। वह उसकी आत्मसन्तान ही नही, तुम्हारी भी आत्मजा है, तुम्हारे ही रक्त की, वही जिसे तुमने अपने उदरसे जन्म दिया था। सम्हलो, हृदयको अभी से इतना धड़कने न दो। उसे भी तुम शीघ्र ही पाओगी। निस्सन्देह उस परम रूपवती कन्याने ससारकी सबसे सुन्दर आँखें पायी है। वह बाह्य रूप मे भले ही सयोगकी उपज हो, आन्तरिक रूपमें तुम्हारे गहरे प्रेमकी ही सुन्दरतम सृष्टि है। उसे और अपने चिर प्रेमी पतिको तुम शीघ्र ही पाओगी। कब ? ठहरो। तुम्हारा जीवन प्रेमका एक परम सार्थक महान् अभिनय बना है इसका गौरव तुम अनुभव करोगी। अक्षरशः तुम्हारा नया सुनीता नाम उसके लिए सार्थक है। प्रेमके हाथो तुम्हारे जीवनको जो दिशा, और प्रेमकी अगली दीक्षा विवाहके नाते जो गति मिली उसे देखते तुम सुनीता भी हो और सुपरिणीता भी। जो कुछ अब तुम्हारे सामने आ रहा है वह इसका साक्षी होगा। तुम्हारा कुछ भी खोया नही है। समाज के लिए, विशेषकर माता-पिता आदिके लिए यह एक कठोर चक्षुउन्मीलक का काम करेगा। किन्तु वह उसका गौण कार्य होगा। प्रमुख रूपमे यह प्रेमके अतुल सामर्थ्यका ही एक उज्ज्वल कथानक होगा। यह ससारको बतायेगा कि प्रेम प्रेम ही है, पति पति ही है, पत्नी पत्नी ही है। अपने पतिके साथ मिलकर समाजमें करनेके लिए तुम्हारे सामने लोक-शिक्षणका एक बहुत बड़ा, परम आह्लादकारी, महान् मागल्कि कार्य है। रस, यश और पुण्य, तीनोकी त्रिवेणी तुम्हारे पावोके नीचे बह आयी है। अगले

एक सप्ताहमे तुम्हारी आँखोमे आनन्द और उल्लासके जो आँसू बहेंगे वे तुम्हारे वक्षके भीतर एक नये हृदयको जन्म देगे और उनके प्रवाहमें तुम्हारे कपोलोपर आयी हुई रेखाएँ भी बह जायेगी। तन और मनमे तुम पुन निखर उठोगी।

पत्र समाप्त हो गया है और अपने उस चिर स्वजनसे मिलनेके लिए तुम्हे अधिक प्रतीक्षा नही करनी पडेगी। इन पंक्तियोको पूरा कर जैसे ही तुम्हारी आँखे ऊपर उठेगी, उसे समक्ष पायेगी!

× × × ×

पत्र समाप्त कर मधुकी आँखे ऊपर उठी। उसके सामने कोई था? हाँ, केवल पत्र लानेवाला पोस्टमैन। मधुका मस्तिष्क घूम गया। उसने देखा खाकी वर्दी, बगलमे लटकता चमडेका थैला, फिर मुख, फिर आँखें—अपलक सुतीक्ष्ण आँखें! मधुकी आँखें उन्हीमे अटक गयी! उसकी चेतना लौटी। उसने पहचाना—वही, जिसे उसने इक्कीस वर्ष पहले प्यार किया था! बिलकुल वही, वैसा ही। उसकी आँखोसे आँसुओकी धारा बह निकली। वह अपने घुटनोपर बैठनेके लिए झुकी, लडखडायी और गिरी—धरतीपर नही, दो बलिष्ठ बाँहोके पाशमे, और उसकी मीलित आँखोकी धारासे उसके स्वजनका वक्ष भीग गया।

विवाहकी वेदीपर

मेरे स्वामी,

आजसे बारहवें दिन आप मुझे लेने आ रहे हैं। आप ले चलेंगे तो चलूँगी ही। हिन्दू नारीकी गति और आश्रय उसका पति ही है। मेरे माता-पिताने मुझे आपके हाथो सौंप दिया है। उनका अधिकार था। शरीर उन्हीका दिया हुआ है। उन्होने जहाँ, जैसे चाहा दे दिया। किन्तु इसके साथ जो एक सबसे आवश्यक वस्तु देनी चाहिए थी वह नही दी। वह उनके हाथमे थी भी नही। उसकी बात मै आपसे कहना चाहती थी पर कह नही सकी। आपने कहनेका मुझे अवसर नही दिया। आपके घरमें एक सप्ताह रही। पहली रात, भेंटके पहले ही क्षणोमे मुझे आपके जिन आदेशोका पालन करना पडा उनमे मुझसे कुछ कहनेका स्थान नही था। मुझे इसकी कल्पना पहलेसे नही थी। मुझे आशा थी कि आप मुझसे कुछ बात करेंगे, मुझे कुछ अवसर देंगे और तब मै बतानेका प्रयत्न करूँगी कि मेरे इस हृदय-रहित शरीरमें आपके स्पर्शको सुख देनेवाली कोई वस्तु नही है। मैने सोचा था कि वह सब बात आपसे कहूँगी—और उसे सुननेके पश्चात् भी यदि आपको मेरे तनसे विरक्ति नही होगी तो उसे आपको सौंपकर हल्की हो जाऊँगी। मुझे आश्वासन मिल जायेगा कि आपके घरकी सेवा-टहलके बदले मुझे रोटी और वस्त्र मिलते रहेंगे और जितने भी दिन जीना पडे मै आपके आश्रयमें एक विवाहिता साध्वी-सा जीवन बितानेका प्रयत्न करूँगी। किन्तु मेरी सोची बात नहीं हो सकी। आपके मार्गमे बाधक बननेकी शक्ति मुझमें नही थी। सम्भवत अधिकार भी नही था। अपनी विवाहिता नारीसे, उसके मुखका मौन तोडनेसे भी पहले, आपको जो कुछ चाहिए था वह आपने ले लिया। उसके बाद कुछ कहनेकी चाह थी भी मेरे मनमें नही रह गयी। एक क्षीण-सी आशा पहले थी

कि शायद आपके सौजन्यका कोई कण मुझे मिल जाये जिससे मेरा हृदय और शरीर एक साथ रह सके। किन्तु वह भी बुझ गयी। मुझे लगा कि मेरा शरीर हृदयसे सदाके लिए विलग कर दिया गया।

आपके घरमे एक सप्ताह रही। मेरे खान-पान-विश्रामकी आपने चिन्ता रखी। अपनी ओरसे सत्कारमे कोई कमी नही आने दी। सौन्दर्यके प्रसाधना और बहुमूल्य भेंटोसे आपने मुझे मढ दिया। उन्हे मैने अगीकार किया। वे उस शरीरके लिए थी जो आपका हो चुका था। इतना ही आभास मुझे मिला कि आप सत्कार करनेमे समर्थ है।

नही कह सकती कि यह पत्र आपको कैसा लग रहा है और इसका परिणाम मेरे लिए क्या होगा, किन्तु जो है उसे अब छिपा भी नही सकती। उस रातके बाद मैने सोचा था कि उसे छिपाये रहकर आपके आश्रयमे जीवन काटा जा सकता है। आपके घरसे पिताके घर आयी तब भी यही सोचती रही—यहाँ आये चार महीने पूरे हो रहे है और इतना सोचनेके बाद अब देखती हूँ कि वह मेरा भ्रम था। हृदयको शरीरसे अलग रखकर मै जी नही सकती और शरीरकी किसी उपायसे हत्या किये बिना मर भी नही सकती। जीवन और मृत्युके बीचका यह जीवन भी अधिक दिन नही झेल सकती।

आपने एक दिन मेरी बाँहो और पिंडुलियोपर पडे हुए निशानोको देखकर पूछा था कि वे क्या है। मैने कह दिया था कि वे गिरनेसे लगी हुई चोटके निशान है। पता नही, आपको उस उत्तरसे सन्तोष हुआ था या नही, पर उस बातको आपने आगे नही पूछा था। किन्तु वे गिरनेसे लगी चोटके निशान कैसे हो सकते थे! वे वास्तवमे मेरे पिताजीके मेरे शरीरपर अधिकारके निशान थे। पिताजी अत्यन्त प्रतिष्ठित और बहुत दयालु व्यक्ति है। किसी दु खी-पीडितका दर्द उनसे देखा नही जाता। दु खियोकी सहायताके लिए उनका सेवाभाव प्रसिद्ध है। ऐसी दशामे अपने इन चिह्नोको उनकी कठोरताके कैसे कहूँ, अधिकारके ही चिह्न मान सकती

हूँ। उनकी संख्या बाँहों और पिंडुलियोंकी अपेक्षा मेरी पीठपर अधिक है। पिताजीके बेंतोंके स्पर्शसे खाल कहीं-कहीं उभरकर नीली पड़ गयी थी और वहीं फटकर रक्त दे गयी थी। उसीके ये चिह्न, डॉक्टरका कहना था, यदि मिटे भी तो दस वर्षके पहले नहीं मिटेंगे। जिसे पिताजी मेरा कलंक कहते हैं—और आप भी उसे किस दूसरे नामसे पुकारेंगे उसकी कहानी इसी विवरणसे प्रारम्भ कर रही हूँ।

जिनके चरणोंमें मेरा हृदय समर्पित हुआ है उनके घरके पास ही उन दिनों मेरे पिताजीने मकान ले रखा था। यह उस शहरकी बात है जिसे पिताजीने अभी पाँच महीने पूर्व ही छोड़ा है। मेरा वह समर्पण कैसे हुआ, मैं स्वयं नहीं कह सकती, पर इतना जानती हूँ कि वह अनायास नहीं हुआ। कमसे-कम चार वर्षके परिचय, समीपता और सम्पर्कका वह परिणाम था। उस समय मैं केवल चौदह वर्षकी थी। जैसे-जैसे मेरी दृष्टि जागती गयी अन-जाने ही उनके गुण और स्वभाव मेरे भीतर घर करते गये। उनके गुणोंमें एक गुण अगाध प्रेमका भी था। वह अदृश्य और शान्त होकर ही रहता था। उनका प्रेम सबके लिए था—सभी प्रकारके व्यक्तियों तथा पशु-पक्षियों और वृक्षों तकके लिए। मैंने देखा कि उनका प्रेम मेरे लिए भी था। वह प्रेम धीरे-धीरे मेरे मनमें आकर्षण बनकर समाता गया और एक दिन मुझे लगा कि उनका रूप भी अब एक नया अर्थ लेकर मेरी आँखोंमें बस गया है। अब मैं अठारह वर्षकी हो चुकी थी। मेरा सब-कुछ उनपर समर्पित हो चुका था। उस सब-कुछमें मेरा नया जगा हुआ नारीत्व भी था और उसे मैं अलग नहीं रख सकती थी। और फिर एक दिन वह भी आया जब मेरे आत्म-नियन्त्रणका बाँध टूट गया। मैंने अपने आपको सशरीर उनके चरणोंमें डाल दिया और उन्होंने अपनी भुजाओंमें मुझे भर लिया। उनके होठोंका वह स्पर्श मुझे मिल गया जो मुझे मेरी साधका चरम लक्ष्य प्रतीत होता था। अपनी बाँहोंसे मुझे मुक्त कर उन्होंने कहा कि यह पर्याप्त है और सदाके लिए पर्याप्त हो सकता है। मुझे भी उस समय लगा कि जो

कुछ मिल गया है उससे जीवन-भरके लिए तृप्ति हो गयी है। उन्होंने मुझे समझाया कि माता-पिताकी इच्छा और मान्यताओंका तथा समाजकी मर्यादाओंका भी मुझे ध्यान रखना चाहिए। इन सबका निर्वाह करते हुए भी प्रेमका निर्वाह किया जा सकता है। प्रेम व्यापक वस्तु है, वह किसी एक व्यक्तिमें बँधकर न रह जाना चाहिए, तभी वह मनुष्यको सुख और विकासकी दिशामें ले जा सकता है। समाज और कुलकी मर्यादाके अनुसार आवश्यक होगा कि मेरा किसी स्वजातीय नवयुवकसे विवाह हो। इस सबके लिए मुझे तैयार होना चाहिए। वह भी मेरे सुख और प्रेमके विकासका साधन होगा। उनकी ये सब बातें उस समय मेरी समझमें बिलकुल ठीक और सुगम प्रतीत हुई। तृप्तिका एक गहरा आनन्द लिये मैं अपने घर लौट आयी।

अभी-अभी मैं यह सोच कर सिहर उठी हूँ कि ये बातें, और ऐसे शब्दों में, मैं अपने पतिको लिख रही हूँ—उन पतिको जिनके हाथों समाज और धर्मकी सबसे ऊँची सत्ताओंने मुझे सौंपा है। किन्तु उन शब्दोंको लिखते समय मैं ऐसी बहक गयी थी मानो अपने किसी परम सहृदय सखाको ये बातें बता रही हूँ। फिर भी अपनी उस बहकपर मुझे कोई लाज नहीं है। अपनी स्थितिपर ग्लानि भी नहीं है। आपके सामने अपने मनकी स्थिति खोलकर ही रखना चाहती हूँ।

घर लौटनेपर मेरी माँका आदेश मुझे मिला कि मैं अब कभी भी उनके घरकी ओर आँख तक नहीं उठाऊँगी। शामको पिताजी घर लौटे और अगली सुबह उन्होंने भी उसी आदेशको और भी कठोर शब्दोंमें दुहराया। बादमें मुझे मालूम हुआ कि मेरी माँने वह दृश्य कहींसे किसी प्रकार देख लिया था।

किन्तु मैं विवश थी। मेरी आँखें उनके घरकी ओर बराबर उठती रहीं कि उनकी एक झलक ही कहीं मिल जाये। और एक दिन जब वे मुझे दिखायी पड गये तो मेरे पाँव भी उनके घरकी ओर उठ गये। उन्हें कुछ

समीपसे देखनेके लिए मेरे पग बढे और पीछेसे मेरी मांने मेरी बाँह खींच ली। मै खीचकर घरकी एक कोठरीमें ले जायी गयी। पिताजी घरमे ही थे। उन्होंने वही किया जो कह रखा था। मेरे शरीरके वे चिह्न उसी दिनकी यादगार है।

चार दिन बाद मेरा बुखार उतरा और दस दिनमें घाव भी इतने भर गये कि मैं कमरेसे निकलकर आँगन तक चलने फिरने लगी। पिताजीने मुझे धमकाकर फुसलाकर हर तरह अपनी राहपर लानेका प्रयास किया और बताया कि उन्होने मेरा विवाह एक बहुत अच्छे लडकेसे तय कर दिया है। मैंने अपने मनकी सारी विवशता उनसे कह दी और प्रार्थना की कि मेरा विवाह कदापि, कही न करे। मै हृदयसे जिन्हें आत्म-समर्पण कर चुकी हूँ उन्हीकी हूँ, किसी औरकी नही हो सकती। पिताजीसे मैंने कह दिया कि यदि इससे वे अपने धर्म और कुलकी मर्यादाकी हानि समझते है तो मै उनके घर आजीवन घरकी बन्दिनी बनकर रहनेको तैयार हूँ।

पिताजीने मेरे इस उत्तरपर कुछ नही कहा। उसकी चौथी शाम मुझे मालूम हुआ कि मुझे पिताजीके साथ अगली सुबहकी गाडीसे कही बाहर जाना है। मेरे वस्त्र-बिस्तर तैयार कर दिये गये। उसी रात उनकी पत्नी अचानक मेरे पास मेरे एकान्त कमरेमें आ गयी। उन्होंने अपने पतिका सन्देश सुने दिया कि वे मेरे लिए कुछ भी नही कर सकते। मुझे अपना हठ छोड-कर पिताकी आज्ञाको हृदयसे स्वीकार करनेका प्रयत्न करना चाहिए। मेरा हित और सुख इसीमे है। फिर भी यदि मै अपने-आपको कभी आश्रय-हीन या किसी गहरे सकटमे पाऊँ तो उनका घर और उन दोनोके हृदय मेरे लिए सदा खुले है। उनका यह सन्देश देते-देते उनकी पत्नीने मुझे हृदयसे लगा लिया और उनकी आंखोके दो गरम बूँद मेरे माथेपर ढुलक पडे। मै पुलक उठी। उनका स्नेह मैंने पहले भी पाया था किन्तु अपने नये मनोभावके कारण और विशेष कर उस दिनकी घटनासे डर रही थी कि उनकी दृष्टिमें मै अक्षम्य अपराधिनी हूँगी। किसी नारीमें अपने पतिकी

याचिकाके प्रति भी ऐसी ममता हो सकती है, मैंने कभी कल्पना न की थी।

दूसरे दिन पिताजी मुझे मेरे मामाजीके घर छोड आये। मामाजीको आप जानते ही है। वे पुलिसके थानेदार रहे है और उन्हीके घरमे आप मुझे विवाह कर लाये है। मामाजीके घर तीन महीने तक जो व्यवहार मुझे मिला उसका कोई चिह्न मेरे शरीरके ऊपर नही है, भीतर हो सकता है। उसकी विशेष चर्चाकी यहाँ आवश्यकता भी नही है। सक्षेपमे इतना ही कहना पर्याप्त है कि पहले महीनेमे अन्न और पानीको ग्रहण करनेवाली मेरी आँतोको जितना विश्राम मिला वह मेरी मन स्थितिके अनुकूल ही था, किन्तु जिस विशेष कोठरीमे मुझे दिनके छह-छह घण्टे रखा गया उसमे इतनी हवाका मार्ग नही था कि कोई आठ घण्टे तक साँस लेता रह सके। मामाजीके घरमे ऐसी एक विशेष कोठरी है। यह सब उपचार इसलिए था कि मै पिताजीको पत्र लिख दूँ कि उनकी इच्छानुसार विवाह करनेके लिए तैयार हूँ। किन्तु इस यातनासे उन्होने अपने आप बिना शर्तके ही एक महीने बाद मुझे मुक्ति दे दी। मामाजीने मुझे बताया कि मेरे प्रेमीपर मुकद्मा चल रहा है और उन्होने बयानमें कहा है कि उन्हे उस लडकीसे कोई प्रेम नही है। मैने विश्वास नही किया फिर भी आशकाका एक अगारा मेरे हृदयपर रख ही गया। इसके डेढ महीने बाद एक दिन उन्होने अखबारका एक पन्ना मेरे हाथमे दे दिया। अखबार मेरा परिचित था, मेरे पिताके नगरका एक दैनिक। उसमे उसी मुकदमेके फैसलेका उनके नामके साथ समाचार छपा था। उन्होने अपने बयानमे कहा था कि वह लडकी चरित्रकी ठीक नही है, उसने स्वय ही उन्हे आकर्षित करनेका प्रयत्न किया था, वे निरपराध है। मजिस्ट्रेटने केवल दो-सौ रुपये जुर्माना करके उन्हे छोड दिया था। मुझे विश्वास नही हुआ फिर भी जैसे वज्राघात लगा। यह अखबारका ही पन्ना था। दोनो ओर छपा, ऊपर नाम, तारीख सब यथावत्। अविश्वासका भी कोई मार्ग नही था। मुझे ध्यान आया, उन्होने कहा भी तो था कि वे मेरे लिए कुछ नही कर सकते। मै सन्न रह गयी।

जैसे मेरा सिर और धड़ बरफके पहाड़मे दबा दिया गया हो ।

पाँचवे दिन पिताजी माताजीको साथ लेकर आ गये । उन्होने बताया कि मेरा विवाह एक अन्य, बहुत समृद्ध घरमे तय हो गया है । विवाहकी तिथिके तीन सप्ताह शेष है । उन्होने अपना हजामत बनानेका उस्तरा खोलकर अपने हाथमे ले लिया, माताजीके हाथमे विषकी पुड़िया दे दी । कहा कि यदि मै यह विवाह नही स्वीकार करूँगी तो माताजी अभी विष खाकर सो जायेगी और वे स्वय उस्तरेसे अपनी नाक काटकर अस्पतालमे भर्ती हो जायेंगे और फिर दुनियाको बतायेगे कि यह अपनी पुत्रीके चरित्र का चिह्न उन्होने अपने मुखपर धारण किया है। मै सहम गयी। मेरे आग्रह का आधार पहले ही छिन गया था । पिताजी उस नगरके कांग्रेसके एक पुराने कार्यकर्ता थे । गान्धीजीके सत्याग्रह आन्दोलनमे उन्होने पूरा भाग लिया था, दो बार जेल भी गये थे । उसी पवित्र अस्त्रका सदुपयोग वे इस समय भी कर रहे थे । मै पराजित हुई। मैने कह दिया कि यह शरीर अब मिट्टी है, वे जहाँ भेज देंगे मै चली जाऊँगी ।

किन्तु उसी रात मेरा मन फिर पुकार उठा । असम्भव है कि उन्होने मुझे चरित्रहीन कहा हो । असम्भव है कि इस तरह किसीपर मुकदमा चलाया जा सके । और मनकी पुकारका उत्तर भी भगवान्ने तुरन्त भेज दिया । मेरे पैर उस कागज़पर जा पड़े जो पिताजीके साथ पूरियोपर लिपटकर आया था । वही अखबार उसी तारीखका । उस पन्नेपर और सब खबरें ज्योकी-त्यो थीं, किन्तु मुझसे सम्बद्ध वह खबर नही थी । उसकी जगह एक दूसरी ही खबर छपी हुई थी, अदालती दुनियाकी ही । भेद भी मेरी समझमे आ गया । मामाजीने उस अककी प्रति मँगवाकर वह पन्ना ज्योका-त्यो, केवल एक खबरकी जगह दूसरी खबर मेरे लिए बदलकर अपने शहरके किसी प्रेसमे गुप्त प्रबन्धसे छपाया था ।

फिर भी विवाहकी जो स्वीकृति मै दे चुकी थी उसे वापस लेनेका साहस मुझे नही हुआ । इच्छा ही नही हुई । वह उस्तरा और ज़हरकी

पुडिया भी मेरे सामने झूम रहे थे। शरीरको मिट्टी कह चुकी हूँ तो मिट्टी ही मानकर इसका निर्वाह कर ले जाऊँगी, ऐसा भी कुछ आभास मिला। एक आशा यह भी मनके किसी कोनेमें अंकुरित हुई कि अपने देहके स्वामी से सब-कुछ कहकर सम्भवत कोई मार्ग खोज पाऊँगी। उसके चौबीसवें दिन मैं आपके घर आ गयी। वहाँ पहुँच कर मेरी वह आशा भी समाप्त हो गयी और उसके साथ ही मेरी चेष्टा भी। और यही आपसे जो कहनी थी वह कहानी भी समाप्त हो जाती है।

अब आपको पता लग गया है कि आपने कैसी लड़कीसे विवाह किया है। पिताजीको ये सब बातें आपसे छिपाकर ही अपना कर्तव्य पूरा करना था सो उन्होंने कर दिया है। अपने सम्बन्धमें मेरे मनमें जो भ्रम था वह भी अब दूर हो गया है। बहुत प्रयत्न करके भी मैंने देख लिया है कि उनके बिना मैं रह नहीं सकती। अपने हृदयको उनके पास और शरीरको आपके पास नहीं रख सकती। तीन ही मार्ग अब मेरे लिए हो सकते हैं। या तो आप मुझे बिलकुल मुक्त कर दें, भूल जायें कि आपने मुझसे विवाह किया था। कुल-मर्यादा या लोकापवादके कारण ऐसा न कर सकें तो मुझे अपने घरकी नौकरानी बनाकर पड़ी रहने दें। वर्षमें ग्यारह महीने मैं आपके घरकी टहल करूँगी और एक महीना अपने देवताके चरणोंमें बिता कर अगले वर्ष-भरके लिए जीवनका संचय कर लूँगी। आप इसे अपने कुटुम्ब और समाजसे छिपाकर रखना चाहें तो रख सकते हैं। लोग यह समझकर कि मैं अपने मायके गयी हूँगी आपपर उँगली नहीं उठायेंगे। और यदि यह भी आपके लिए स्वीकार्य या सम्भव न हो तो आप मुझे आज्ञा दे सकते हैं कि मैं विष खाकर या जैसे भी आप कहें अपना यह जीवन ही समाप्त कर लूँ। मुझे इसमें तनिक भी कठिनाई न होगी। किन्तु बिना आपके आदेशके अपनी इच्छासे ऐसा नहीं कर सकूँगी। आत्म-हत्या करते मुझे भय लगता है किन्तु आपका आदेश मिल जाने पर वह धर्म और समाज की आज्ञाका पालन हो जायेगी। वह विवाहकी पवित्र वेदीपर मेरी आठवीं

भंवर बन जायेगी। धर्म परलोकमे मेरी रक्षा कर लेगा। हिन्दू धर्मके संस्कार मेरे मनपर बचपनसे ही गहरे अंकित है। आत्म-हत्यामे इसलिए डरती हूं कि वह एक और जीवकी हत्या भी होगी। आपकी दी हुई धरोहर मेरे उदरमे चार माससे सुरक्षित है। उन्ही संस्कारोके कारण मै आपके और पिताके कुलोकी प्रतिष्ठामे कोई दूसरा दाग नही लगने देना चाहती। मेरी असहाय विवशतामे यदि पहले ही कोई लग गया है तो लग ही गया है।

अब आप अपना निश्चय कर ले। आप समाजमे पूछ ले, कानूनसे पूछ ले, धर्मसे पूछ ले। आप चाहे तो मेरे इस पत्रको जाति-बिरादरीकी सभामे निर्णयके लिए प्रस्तुत कर दे, सरकारको भेज दे, धर्मके पुरोहितोके पास भेज दे, अखबारोमे छपा दे, जिसकी भी सलाह आप चाहे ले ले, और यदि इन सबके बाहर आपके पास हृदय हो तो उससे भी पूछ लें। उन तीनके आगे चौथा कोई मार्ग मेरे लिए नही है, इसे देखते हुए आपकी जो भी आज्ञा होगी मुझे शिरोधार्य होगी।

प्रतीक्षामे—

आपकी दासी

..

नया कबाडिया

प्रिय ककुल,

तीन दिनके मानसिक परिश्रमसे जो ३०७ मित्रो और परिचितोकी सूची बना पाया हूँ उनमे तुम्हारे नामका परचा सबमे पहला निकला है, इसलिए तुम्हें ही इस विषयका यह पहला पत्र लिख रहा हूँ। आशा है अपने नामके साथ प्रारम्भ किये हुए इस अनुष्ठानको असफल होने न दोगे।

मेरी आर्थिक स्थितिसे तुम परिचित हो। पिछले वर्ष चार दिन मेरे मेहमान रहकर स्वय देख चुके हो। हालत उससे भी गिरी हुई समझ लो। परिस्थितिको सम्हालनेके लिए मैंने एक छोटी-सी कबाडियेकी दूकान करनेका निश्चय किया है। लेकिन उसके लिए भी तो कुछ पूँजी चाहिए, वह कहाँसे आये? किसी महाजनसे कुछ उधार मिलनेका प्रश्न ही नही है, मित्रोंसे भी माँगनेमे सकोच है। जानता हूँ जो कुछ थोडा-बहुत मिल पायेगा वह पर्याप्त न होगा और उसे देनेमे मित्रोपर भी बोझ पडेगा। इसलिए पैसा तो किसीसे एक भी लेना नही है—कोई देना चाहे तो भी नही। अलबत्ता अपने कुछ मित्रोसे इस व्यवसायको प्रारम्भ करनेके लिए कुछ पुरानी वस्तुएँ पाना चाहता हूँ, ऐसी वस्तुएँ जो अब उनके उपयोगकी नही रह गयी है पर दूसरे गरीब लोगोके काम आ सकती हैं। आगे चलकर जब कुछ पैसा इस धन्धेसे उठने लगेगा तो खरीदकर भी ऐसी वस्तुएँ दूकानमे लाऊँगा।

बस कहना यही है कि कोई एक पुरानी चीज भेज दो उसीसे अपने व्यवसायका श्रीगणेश करूँगा। मिसालके तौरपर तुम्हारे उस पुराने ओवरकोटकी मुझे याद आ रही है जिसे पहनकर तुम यहाँ आये थे। तुमने कहा था कि वह तीन जगहसे फटा हुआ था और तुम्हारे लिए बिलकुल

अनुपयुक्त हो गया था। यदि तुमने दूसरा ओवरकोट बनवा लिया हो और वह पुराना बेकार हो रखा हो तो उसे भी भेज सकते हो। फिर भी ओवर-कोट तो कीमती चीज़ है, तुम कोई आठ आनेकी चीज़ भी भेजो तो मै उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगा।

२७-१०-१९५१]

तुम्हारा
धीरज

●

प्रिय सुधीर,

पत्र पाकर दु:ख हुआ, साथ ही मुझपर हँसी भी आयी! तुम्हारी उन प्रेम-कहानियोंका क्या हुआ? तुम कहते थे कि वैसी कहानियाँ पत्रोमें भेज-भेजकर दाल-रोटी-भरको रुपया कमा लोगे। आखिर यह चीज़ नही चली न? मैंने पहले ही कहा था। आजकी दुनियामें आदमीको पैसा चाहिए, पैसा, न प्रेमसे उसका पेट भर सकता है न कहानियोसे। अच्छा है तुम्हें कुछ करने की अकल तो आयी। लेकिन यह कबाडियेकी दूकानका खब्त कैसे पैदा हुआ? किसानखानेकी एक छोटी-सी दूकान क्यो नही कर लेते? अपने माँ-बाप, कुल-परिवारकी छोटी-मोटी मान-बडाईका भी तुम्हें कुछ ध्यान रखना चाहिए। तुम चाहो तो मैं अपने किसी मित्रसे साझेके नामपर हज़ार पाँच-सौ रुपया डालनेकी बात चलाऊँ।

फिर भी जो 'अनुष्ठान' तुम मेरे नामसे प्रारम्भ कर रहे हो उसमे मैं उपदेशक बनकर तुम्हारी बोहनी नही बिगाडना चाहता। रंगी बाबू आ रहे है, उन्हींके हाथो वह ओवरकोट भेज रहा हूँ। मेरा नया बन गया है। इसको धुलाकर इसकी मरम्मत भी करा दी है। रुपये तुम शायद सचमुच स्वीकार न करो, इसलिए नही भेज रहा हूँ। भेजता तो भी पचास, हद सौसे अधिक इस समय नही भेज पाता। कारण, कारबारमें आजकल सन्नाटा है। तीनो मकानोका किराया तीन-सौ रुपये आता है। यही अकेली चालू आमदनी है, बाकी घरकी पूँजी खाकर गुजारा कर रहे है।

एक डर है कि इस कोटसे शायद तुम कुछ भी पैसा उठा नहीं सकोगे। सर्दियाँ आ रही हैं, हो सकता है तुम स्वयं इस कोटको पहननेके लिए विवश हो जाओ। इसलिए साथमें रेशमी शेरवानीका एक सूट भी भेजता हूँ। चार-छह बारका पहना, अभी बिलकुल साफ और मजबूत है। मेरे मनसे उतर गया है। किसीको देनेकी सोच रहा था, सो तुम्हारी ही भेंट है। इससे कुछ अच्छे पैसे भी मिल सकेंगे। व्यवसायमें सफलताकी कामना के साथ।

८-११-१९५१]

तुम्हारा
भीमसेन

•

प्रिय ककुल,

ओवरकोट मिल गया, पत्र और रेशमी सूट भी। यह सूट लगभग बेकारकी चीज़ है। गरीब आदमी ऐसी पोशाक खरीदने क्यों लगा, और जो बड़ा आदमी इसे लेना पसन्द करेगा वह पुरानी क्यों खरीदेगा? फिर भी एक चीज़ तो है ही, कुछ-न-कुछ दाम कभी उसके भी उठेंगे। ओवर-कोट बहुत अच्छा है। तुमने ठीक समझा, इस समय मुझे तुम्हारे उपदेशकी ज़रूरत नहीं है। तुम बहुत भले आदमी हो।

मेरे पास इस सर्दीके लिए कोई गरम कोट नहीं है, इसपर तुम्हारा यह भय कि मैं स्वयं उसे पहन लूँगा, निर्मूल बल्कि कुछ निरादरसूचक भी है। मेरे व्यवसायकी जितनी चिन्ता तुम्हें हो सकती है उससे कहीं अधिक वह मुझे प्यारा है। आशा है, तुम्हारे दुःख और हँसी दोनोंका ठीक उत्तर देनेका अवसर मुझे मिलेगा।

१२-११-१९५१]

तुम्हारा
धीरज

•

छपा हुआ—

मित्रवर,

आप सम्भवत जानते है कि मैने पिछले तीन-चार वर्षमे अपनी मातृ-भाषाके साहित्यकी कुछ सेवा की है। जो कुछ मैंने किया है उसमे साहित्यिक कलाकी कमी भले ही रही हो, लेकिन साहित्य और समाजकी सेवाकी भावना विशेष रही है। उसी सेवा-भावनाको लिये हुए और कुछ अपनी परिस्थितियोसे प्रेरित होकर मैने एक छोटा-सा व्यवसाय प्रारम्भ करनेका निश्चय किया है। आप साहित्यानुरागी हैं और इस नाते मै आपको अपना संरक्षक मानता हूँ और आशा करता हूँ कि आप मेरे व्यवसायमे मेरी कुछ-न-कुछ सहायता अवश्य करें। मेरा निश्चय एक कबाडियेकी दूकान खोलनेका है, जिसमे पुरानी चीजोका क्रय-विक्रय होगा। लेकिन अभी मेरे पास कोई ऐसी पूंजी नही है, जिससे दूकानके लिए माल खरीदने निकल सकूँ। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप अपने घरकी कोई भी ऐसी वस्तु मुझे प्रदान करनेकी कृपा करें जो आपके लिए अनावश्यक हो और किसी गरीबके काम आ सकती हो। आप चाहे तो मैं आपकी उस वस्तुको उधार खातेमे लिख सकता हूँ और समय आनेपर उसका कुछ न-कुछ दाम भी आपको चुका सकता हूँ। पर अभीसे ऐसा उधार मांगनेका साहस मै नही कर सकता हूँ जबकि मेरे व्यवसायकी भावी सफलता-असफलताका मुझे ही कोई भरोसा नही है। समय आया और आपकी अनुमति मिली तो मै आपके घर वैसी वस्तुएँ खरीदने भी कभी आ सकूँगा और तब आपके घरके कूडेको भी साफ-सुथरे तांबेसे लेकर चांदी-सोने तकके सिक्कोमे बदलनेका गौरव मुझे प्राप्त होगा।

आपके घरकी जो पुरानी वस्तुएँ मेरे विशेष उपयोगकी हो सकती है उनमें-से कुछ ये है

पहनने अथवा ओढने-बिछानेके कपडे, टूटे मेज-कुर्सी, चारपाई आदि फर्नीचर, टूटे या घिसे बर्तन किसी भी धातुके, रद्दी कागज अथवा पुरानी

पुस्तकें, टूटी हुई मशीनो अथवा गाडियोके पुरजे, इस्तेमाल की हुई स्टेशनरी का सामान, घिसे अथवा खोटे सिक्के, पुरानी बोतलें, शीशियाँ, शीशे, कघे, चाकू, ब्लेड, ताश, शतरज, खिलौने आदि खेलकी वस्तुएँ, साबुन, तेल, स्नो, क्रीम, पाउडर, चप्पल, जूते, छडी, झाड़ू, झाडन, चश्मे, तसवीरें और उनके फ्रेम आदि।

इनके अतिरिक्त कोई भी वस्तु जिसे आप किसी अन्य व्यक्तिके लिए उपयोगी समझते है, मुझे दे सकते है। लेनेके लिए मैं स्वय कभी आपके द्वारपर आऊँगा। आप अपना सकल्प कर रखे, इसीलिए यह पत्र पहलेसे भेज रहा हूँ।

यदि आप स्वय या आपके कोई स्वजन लेखक है तो आपकी या उनकी लिखी पुस्तकोकी एक-एक प्रति भेंट-स्वरूप पाकर मैं विशेष अनुगृहीत हूँगा। पुस्तकपर भेंटके कोई शब्द न लिखे जायें, जिससे वह दूकानपर एक नयी पुस्तककी हैसियतसे बेची जा सके।

सविनय आपका
सुधीरचन्द्र

दूसरे कागज़पर हस्तलिखित · पिनसे जुड़ा हुआ—

प्रिय ककुल,

यह साथका पत्र मैंने अपने ३०७ मित्रो-परिचितोके नाम भेजनेको छपाया है, तुम्हें भी एक प्रति भेज रहा हूँ। आगे भी कोई और वस्तु दे सकना तो मेरे लिए सुरक्षित रखना। तुम्हारे द्वारपर भी आऊँगा।

तुम्हारा यह ओवरकोट सचमुच पहनना ही पडा। पिछले साल मेरे पास कोई गरम कोट नही था, इस साल भी नही बनवा सकता। लेकिन मुँह न बनाओ, मुफ्त नही, उसके सात रुपये मैंने दूकानके हिसाबमे जमा करके तब उसे पहना है। दसमे उसे खरीदना चाहता था, पर उतने नही जुटा सका। उसके सहारे गरम कोटके बिना काम चल जायेगा।

एक बात और कह दूँ। उस ओवरकोटको पहनकर मैंने जाना कि तुम

कितने गन्दे भी हो। उस खूबसूरतीसे मरम्मत किये, धुले, साफ और सदलकी खुशबूमे बसे हुए ओवरकोटके भीतर तुम्हारा जो 'मैगनेटिज़्म' समाया हुआ है, यह एक खतरनाक दर्जेके लोभी और बेईमान आदमीका 'मैगनेटिज्म' है। उसे पहनकर कई बार मेरा इरादा लोगोको और गरीबसे गरीब मजदूरको भी, थोड़े-थोड़े पैसोके लिए भी धोखा देनेका हुआ है। तुमने मुझे दुनियाके लिए कितना भी अव्यावहारिक और निकम्मा समझा हो, लेकिन मेरी स्पष्ट मानसिक दर्शनशक्ति, मेरा मतलब है, 'सेंसिटिवनेस' को तुम मानते हो इसी आधारपर आशा है, मेरे इस आरोपको निर्मूल कहनेका प्रयत्न न करोगे और मेरे इस आरोपको आरोप भी न मानकर एक कथन-मात्र मानकर इसपर विचार करोगे। कही ऐसा तो नही कि यह ओवरकोट तुमने कभी किसी दूसरेको पहननेको दिया हो? खैर यह सब 'बाई दि वे' था, इसकी चिन्ता न करना।

छपा हुआ पत्र दूसरे मित्रोको भी दिखाना।

१८–११–१९५१]

तुम्हारा
सुधीर

●

प्रिय सुधीर,

छपे पत्रके साथ तुम्हारा १८ तारीखका नोट मिला। मेरे ओवरकोटसे तुम्हे मेरे बारेमें जो नयी जानकारी हुई है उसे मैं गलत नही कह सकता। पैसेके मामलेमें किसी भी दर्जेकी बेईमानी और लोभ करते अब मुझे हिचक नही होती। मै जैसा भी हूं, तुम्हारे सामने उघरनेमे मुझे कोई सकोच नही है, क्योकि तुम्ही एक मेरे ऐसे मित्र हो जिसकी उदारतामें मुझे पूरा विश्वास है। कभी-कभी अपनी उस प्रवृत्तिको बुरा समझता हूं। यदि तुम उससे छूटनेका मुझे कोई उपाय बता सको तो मै उसका स्वागत करूंगा।

तुम्हारा छपा पत्र मेरे कुछ साथियोने देखा है। मै समझ पाया कि क्या सोचकर तुमने यह व्यवसाय अपनाया है। लोगोकी वस्तुएं जोड़-जोड़

कर उनका 'मेगनेटिज्म' परखना ही तो कहो तुम्हारा उद्देश्य नही है ? कुछ भी हो, इस व्यवसायमे तुम्हे लोगोकी हँसी और आवाजकशीका भी निशाना बनना पडेगा। मेरे एक पडोसीने तुम्हारा पत्र देखकर कहा था 'अगर यह साहित्यिक महाशय मेरा पुराना कमोड लेना पसन्द करे तो मै उन्हे भेट कर सकता हूँ। मेरे घरमे एक खस्ता हालतमे पडा हुआ है।'

दुनियादारी और उसके व्यापारमे तुम्हे बिलकुल नादान मानता हुआ भी मै तुम्हारा हौसला गिराना नही चाहता। लिखना, दूकान कुछ जम रही है या नही। जब आओगे तब मेरे दरवाजेसे कुछ-न-कुछ पाये बिना नही लौटोगे।

२४-११-१९५१] तुम्हारा
मोमसेन

●

प्रिय ककुल,

२४ का पत्र अभी मिला। मुझे उन जगहोका पता है जहाँ तुम्हारी बुद्धिमत्ता बुद्धिहीनतामे बदल जाती है। तुम्हारे उन पडोसीका कमोड मुझे बहुत-बहुत धन्यवादके साथ स्वीकार होगा, उनसे कह दो। तुम्हे लाज न लगे तो लेकर अपने पास रख लो। लेकिन मेरा स्वय आकर लेना अधिक ठीक रहेगा। लोगोके 'मैगनेटिज्मो'को परखनेकी मूर्खतामे पडनेकी मेरी कोई योजना नही है। मुझे केवल अपने पेट और अपने कामकी व्यवस्था करनी है। तुम्हारी उस प्रवृत्तिको जानकर मुझे कोई निराशा नही हुई है वह तो आजके युगका अर्थ-कौशल है। उससे छूटनेकी चिन्ता करनेकी सलाह मै तुम्हे कभी नही दूँगा। अलबत्ता मानसिक मनोरजनके नाम उस प्रवृत्तिके सकुचित दायरे और नीरसपनको देखनेका प्रयत्न तुम कर सकते हो।

यह जो इतने हठके साथ मैने तुम्हारा नाम ककुल रखा है और जिसे पचासो बारकी दुतकारके बाद अब तुमने आखिर हारकर चुपचाप स्वीकार

कर लिया है उसकी सार्थकता जाननेका समय अब करीब आया जान पड़ता है। तुम्हारे कुल-पुरोहितके रखे नाम भीमसेनसे तुम्हारे स्वभावकी कोई बात नही आती, इसीलिए तुम्हारे आन्तरिक और आगे निखरनेवाले स्वभाव का अनुमान लगाकर मैंने तुम्हारे इसी नामके भाई-बन्द, ऐतिहासिक रूप में पाण्डवोंके दो दूसरे भाइयोके नामोको मिलाकर तुम्हारा यह नाम रखा है और यह मुझे तुमपर बहुत कुछ घटता जान पड़ता है। तुम्हारे पड़ोसमे वह जो तुम्हारे दोस्त रहते है डॉक्टर आचारिया, फिलहाल उनसे पूछना, विद्वान् आदमी है, कुछ व्याख्या बता सकेंगे। तुम्हारे व्यवसायकी बाते मैंने तुमसे कभी नही पूछी, लेकिन आज तुम्हारे इस दो टूक 'कनफेशन'से मुझे बहुत आशा हुई है। तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरी छपी हुई अपीलके फलस्वरूप इन दस दिनोमें मुझे जो चीजें मिली है उनका मूल्य सवा-सौ के लगभग यहाँके पुराने कबाड़ियेने लगाया है।

२९-११-१९५१]

तुम्हारा
धीरज

●

बन्धुवर भीमसेनजी,

(एक लम्बा, खानगी मामलोसे भरा हुआ पत्र। अन्तिम पैराको छोड शेष लाल रोशनाईसे कटा हुआ। उसका अन्तिम पैरा)

आपके लिखनेके अनुसार अबकी बार जानेपर आपके उन दोस्त की दूकानपर भी गया था। पतली-सी गलीमे एक छोटी-सी दूकान है। उस कबाड़की मालियत शायद पचास या सौ रुपये तक हो। मै भी अपना एक पुराना फाउण्टेनपेन, जिसमें कुछ मरम्मतकी जरूरत थी, उन्हे भेंट कर आया हूँ। आदमी भले है, लेकिन आजके जमानेमे सिर्फ भला होना काफी नही है।

७-४-१९५२]

आपका कृपाभिलाषी
रघुनन्दन

प्रिय सुधीर बाबू,

मैं अपनी मोटर-साइकिल बेचना चाहता हूँ। गाडी चालू हालतमें है, थोडी मरम्मतकी ज़रूरत है। यहांके डीलरने उसके चार-सौ रुपये लगाये हैं लेकिन मेरा अन्दाज और ज़रूरत भी कमसे-कम आठ-सौकी है। आपकी दूकानमें ऐसी चीजें नही बिकती, फिर भी शायद कोई ग्राहक आप बता सकें इसी आशासे आपको लिख रहा हूँ। एक बहुत जरूरी कर्ज़ चुकानेके लिए दो-सौ रुपये मुझे इसी दस दिनके भीतर चाहिए। कुछ न हुआ तो मजबूरन चार-सौ मे ही मुझे गाडी देनी पडेगी।

८–८–१९५२]

आपका
रमाकान्त गुप्त

●

प्रिय सेठजी,

अपने एक ग्राहकको मैंने दो-सौ रुपया पेशगी देकर उसकी मोटर-साइकिल ले ली है। आपने एक बार अपने मिस्त्रीके लिए एक सेकिण्डहैण्ड मोटर साइकिल लेनेकी बात कही थी। मिस्त्रीको भेज दीजिए। आप न लेंगे तो यह मोटर-साइकिल आपको ही किसी-न-किसीके हाथ बिकवानी पडेगी।

१७–८–१९५२]

आपका
सुधीर

●

प्रिय गुप्तजी,

आपकी मोटर-साइकिल नौ-सौ रुपयेमें बिक गयी है। मेरा २५ प्रतिशत कमीशन काटकर पौने सात-सौ आपके होते हैं, जिसमें-से दो-सौ आप को मिल चुके है, और ४५७ और आपको चाहिए। साथमें पांच सौका चेक भेज रहा हूँ। ये २५ रुपये अधिक मेरे आप अपने पास जमा रखें। इस रकमसे जब कभी आपके पास कुछ फालतू सामान निकलेगा, मैं

खरीदना चाहूँगा।
२५-८-१९५२]

भवदीय
सुधीरचन्द

●

प्रियवर रमाकान्तजी,

आपका १४ ता० का पत्र मिला। मै ऐसा कोई 'महान् आत्मा' तो नही पर निस्सन्देह आपका एक महान् मित्र हूँ। मित्रता और उससे प्रेरित लोक-सेवा मेरे जीवनकी सहज रुचि है। घनिष्ठताके लिए लम्बे-चौडे उपकारो-प्रत्युपकारोकी या दस-बीस वर्षके निकट सम्पर्ककी नही, केवल हृदयोंके खुले होनेकी ही आवश्यकता है। इस तीन महीनेके परिचयमे मैने आपको जितना समीप पाया है उतनी समीपताके लिए आमतौरपर तीस वर्षका सग-साथ भी काफी नही होता। मुझे आश्चर्य है कि इतनी भरी पूरी गृहस्थीके मालिक होते हुए भी आप क्यो इतने कर्ज़दार और पैसे-पैसे के मोहताज है। इतना अटा हुआ सामान आपके किस उपयोगका है? जो वस्तुएँ आपके उपयोगकी नही है उन्हे बेचकर या उनमे-से कुछ ज़रूरत वालोको भेट करके आप क्यो नही अपना बोझ हलका कर लेते? 'इस चीज़ की भी कभी ज़रूरत पडेगी' ऐसी कल्पनाको लेकर हमारे परिवारोमे जो अतिसग्रह और अनावश्यक सग्रहकी प्रवृत्ति बढ गयी है वही हमारी आर्थिक मानसिक दरिद्रता और गन्दगीका सबसे बडा कारण है। इस प्रवृत्तिके कारण हम दूसरोको उनकी आवश्यकताकी वस्तुओमे वचित रखते है और समाजमे वैषम्य, वैमनस्य और अभावका बीज बोते है। जो वस्तु आपके उपयोगकी नही है, वह भले ही आपने अपने या पिताके पैसोसे खरीदी हो, आपकी नही है और वह उनके पास जानी चाहिए जिसे उसकी आवश्यकता है। समाजकी इतनी उदारता ही यथेष्ट है कि उस वस्तुके कुछ दाम भी आपको मिल जायें। आपके घरकी अनावश्यक वस्तुओसे छह जमादार श्रेणी के मजदूरोकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती है और आपके पडोसी टण्डनजी

के गोदाममे भरे, पुराने किये हुए फर्नीचरमे आपके-जैसे बीस बाबुओंको बैठके सज सकती हूं।

अपने घरको सादा और साफ-सुथरा बनाइए, आपको नयी समृद्धि मिलेगी। २८ ता० को आपके कस्बेमे आऊँगा। मेरे पचीस रुपये आपपर बाकी है। आशा है, आप कुछ चीजे मुझे दे सकेंगे।

१७-१०-१९५१] सादर आपका

सुधीर

●

प्रिय रमाकान्तजी,

दोनो बैलगाडियाँ कल सकुशल पहुँच गयी। सब सामान ठीक है। आपके इस उदार दानके लिए मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इन्ही वस्तुओंसे अपनी दूकानमे 'दान और भेंट'का विभाग खोल रहा हूँ। इसे विज्ञापित नही करूँगा। कुछ नाम-मात्रका मूल्य लेकर ही गरीब गरजमन्दोको इस विभागमे से दूँगा। आज ही आपका एक ऊनी स्वेटर मैने सर्दीमे ठिठुरते हुए एक गरीब लडकेको एक आनेमें दिया है। उस इकन्नीकी वह चाय पीने जा रहा था।

कमीशन सेलका विभाग भी मैने आपकी मोटर-साइकिलसे प्रारम्भ किया था। मेरे इस व्यवसायमे बहुत बडा श्रेय आपका है। आशा है, तीन-चार दिनमे ही हमे एक बहुत बडी दूकान मेन रोडपर मिल जायेगी।

२७-१२-१९५२] आपका

सुधीर

●

प्रिय बकुल,

रमाकान्तकी इस आकस्मिक विपत्तिमे तुमने उसे जो शरण दी है उसके लिए मेरा हृदय तुम्हारे प्रति कृतज्ञताओंसे भर उठा है। किसीके सामने मैने आज तक इतनी भावुकताका अनुभव नही किया। हजार [illegible]

सहायतासे वह अपनी छोटी-सी नयी कामचलाऊ गृहस्थी जुटा लेगा। रमाकान्तने तो इतना नहीं लिखा, लेकिन उसके एक पडोसीने ही मुझे बताया है कि उस भयानक अग्निकाण्डमे उसके घरकी एक चौखट भी साबित नही बच पायी। गनीमत हुई कि कोई जान नही गयी। मेरे एक नव-परिचित मित्रके लिए तुमने इतना कुछ बिना मेरे कुछ कहे-सुने ही किया। रमाकान्तको आज दूसरा पत्र लिख रहा हूँ। वह भीतरसे साधु है और मेरा अनुमान है कि इस घटना-द्वारा उसे साधनाके पथपर एक निश्चित कदम रखनेके लिए महत्त्वपूर्ण निमन्त्रण मिला है।

दूकानका बैलेंस शीट तुम्हारे देखनेके लिए भेज रहा हूँ। पिछले मार्चके अन्त तक इसकी मालियत साढे चार हजारकी लगायी है। अन्य खर्चोंके अतिरिक्त साठ रुपया मासिक अपना वेतन लेकर १३० रु०का नकद मुनाफा दूकानके हिसाबमे जमा है।

दूकानका नाम 'सुधीर सरप्लस स्टोर्स' से बदलकर कुछ और रखना चाहता हूँ। कोई नाम सूझे तो बताना।

८-५-१९५३]

तुम्हारा अनुगृहीत
धीरज

●

प्रिय भाई सुधीरचन्द,

अगले महीनेमे हम लोग यहाँका घर छोडकर ऋषीकेश अपने नये आश्रममे जा बसेंगे। मेरे और सुभद्राके दोनो घरोका बहुत-कुछ सामान तुम्हारी भेंट होगा। कुछ कीमती चीज़ोंके जो दाम दे सकोगे, उसे भी हम स्वीकार कर लेंगे। आकर मिलो।

वासन्ती और सुभद्रा दोनो तुम्हें प्रणाम कहती है। तुमने जो काम उठाया है उनके कारण तुम मेरे पूज्य हो। मेरी श्रद्धा और शुभकामना तुम्हारे साथ है।

८-१-१९५४]

सादर तुम्हारा
अनन्तकृष्णायन

●

प्रिय महोदय,

आपका १ फरवरीका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद! हम अभी नहीं कह सकते कि आपका टूटा हुआ दिल खरीदने या बिकवानेमें हम कहाँ तक समर्थ होंगे। यहाँ आकर उसे दिखा जाये। यदि वह सुधरकर काम करने योग्य हो सकेगा तो हम अवश्य ही उसे खरीदने या कमीशन विभाग द्वारा बेचनेका प्रयत्न करेंगे।

४-२-१९५४]

भवदीया
विमला माथुर
व्यवस्थापिका, क्रय विभाग
सुधीर सरप्लस स्टोर्स

●

प्रिय भाभी,

तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने अपने स्टोर्समें टूटे हुए दिलोंका भी सौदा प्रारम्भ कर दिया है। तुम समझती हो, आजकलके भावुक कॉलिजएट लडकोंका दिल दो-चार खूबसूरत लडकियोंके पीछे भागनेसे थक कर कितनी जल्दी टूट जाता है। अपना ऐसा ही टूटा हुआ दिल बेचनेके लिए एक पत्र हमारे स्टोर्समें एक कुँवर साहबका आया। सुधीर बाबूने मुझसे ही उसका उत्तर दिलवाया। उनका अनुमान ठीक निकला। यह महाशय मुझे ही पिछले महीने स्टोर्समें देख गये थे और मनमें बसा बैठे थे और मुझे ही लक्ष्य कर उन्होंने यह पत्र लिखा था। हमारा निमन्त्रण पाकर वह आये। निकले दिल्लीके नामी वकील श्री रूपचन्द नागरके सुपुत्र। इनका नाम है अनूपचन्द नागर। एम० ए०में पढ़ते हैं, सुन्दर हैं। मेरा विवाह न हो गया होता और वैसी उम्र पार न कर गयी होती तो उनपर रीझ जाती। तुम्हारे मतलबका, प्रसन्नताका समाचार यह है कि हमने उनका दिल खरीदा और सरलाके हाथों बेच दिया। दोनों इस सौदेपर टूट पड़े। सरलाको मेरी हम-शक्ल बहन होनेका इनाम मिल गया। अगले शनिवार

को मैं तीन दिनकी छुट्टी लेकर आऊँगी तब सारा पत्र-व्यवहार दिखाऊँगी। फोटो अभी भेज रही हूँ। सुधीर बाबूने एक बात बहुत अच्छी कही। उन्होने कहा, "आजके कॉलिजएट नवयुवकोको दिल टूटनेका रोग बहुत कर आजकी भावुकतापूर्ण कविताओमे, और उनका सौदा करनेका साहस कॉलेजो के वातावरणमे मिल जाता है। ऐसी धृष्ठता कोई उतना दण्डनीय अपराध नही है, उनकी तहमे प्राय सरलताका अल्हडपन रहता है।"

दादासे कहना, सरलाके विवाहके लिए अब उन्हे बीस हजार और तीस हजारकी फिक्र नही करनी पडेगी। यह परिवार बहुत सादा और सुधारवादी है।

२८-२-१९५४]

तुम्हारी प्रिय
विमला

●

प्रिय कक्कुल,

मेरा मेहमान बनकर बिना कहे तुम वह ओवरकोट उडा ले गये, यह तुम्हारी पुरानी आदतका ही गुबार है। उसे पहननेसे तुम्हे जो नयी प्रेरणाएँ मिली है, यह उसके नये 'मैगनेटिज्म'का नही, तुम्हारी नयी कल्पनाओका ही नतीजा हो सकता है। फिर भी, उस मीठे भ्रमके लिए मै तुम्हें धन्यवाद देता हूँ।

तुम्हारे पास तीन लाख रुपया 'हार्ट कैश' है, यह तुमने मुझे अभी तक नही बताया था, और अब बताया है—इन दोनोकी कुछ सार्थकता है। अपने बाप-दादोकी जमा की हुई सम्पत्तिसे मुक्त होकर रमाकान्त अब बाबूगीरी-की चक्कीसे भी मुक्त हो गया है। पुरानी मुर्दा सम्पत्तियो और वैसे ही पैतृक सुगम व्यवसायोंसे मुक्त हुए बिना हमारा आजका नौजवान गृहस्थ अपने अनुकूल व्यवसायको नही पा सकता। उसने सिर्फ दो-सौ रुपयेकी पूँजीसे जो साप्ताहिक पत्र निकाला है उसे तुम देख रहे होगे। कितना बल है उसकी कलममे! वह अब अपने ठीक पेशेपर आ गया है और समाजके लिए कुछ ढगका काम कर दिखायेगा।

मरप्लस स्टोर्मके पाँच विभागोमे-से चार—सेल, क्लियरेंस सेल, कमीशन सेल और नीलाम विभागोंका बैलेंस शीट तैयार है, पाँचवें सर्गेज विभागको तैयार होनेमे एक सप्ताह लग जायेगा। पाँचो इकट्ठे तुम्हारे पास भेजूँगा। पिछले वर्षके मुकाबले इस साल लगभग दूनी रफ्तारसे स्टोर्सका लाभ बढा है। इस वर्ष सवा लाखकी मालियतपर लगभग तेईस हजारका मुनाफा है। इस वर्षके ग्राहकोकी सख्या इक्कीस हजारसे ऊपर पहुँच गयी है और मध्य-वर्गके सवा बारह-सौ व्यक्ति हमारे स्थायी सदस्य, ग्राहक और सप्लायर है। इन सवा बारह-सौ परिवारोने सादे और सुथरे जीवनकी जो प्रेरणा स्टोर्सकी योजनासे ली है और अपनी आर्थिक व्यवस्थामे जो अत्यन्त सुविधाजनक क्रान्ति की है वह हमारी बहुत बडी सफलता है। इस योजनाका प्रभाव समाजमें बहुत दूर तक पडा है। मनुष्यकी आर्थिक सुव्यवस्थितता, आर्थिक स्वतन्त्रता और निश्चिन्तता तथा आर्थिक सक्षिप्तता और सादगीका सम्बन्ध उसके ऊँचेसे-ऊँचे आचारिक और आध्यात्मिक जीवनसे है और एक तरहसे यही उसकी आधारशिला है। यही देखकर मैंने इस योजनाको प्रारम्भ किया था।

अब आखिरी बात। इस स्टोर्सका काम इस वर्षसे तुम्हें सम्हालना है। शीघ्र ही तुम्हे यहाँ लाकर मैं इसका मालिकाना अधिकार तुम्हारे नाम लिख दूँगा। तुमसे अच्छा पात्र दूसरा कोई नही है। लिमिटेड कम्पनी झगडेकी चीज होगी। दो-सौ रुपये मासिकपर तुम्हारी नौकरी करके मैं लोगोसे चीजें खरीदनेका काम जारी रखूँगा। तुम ठीक कहते हो मैं दूसरोका खून चूसनेमे एक्सपर्ट हूँ। और जिसमे एक्सपर्ट हूँ उस कामको जारी रखना मेरा स्वधर्म है। तुम यह भी जान गये होगे कि मैं एक ऐसी 'जार' हूँ जो स्वतन्त्र नही, बल्कि एक कुशल, सहृदय और ईमानदार हकीमके हाथो मे रहकर काम करती है। स्टोर्समे हलका होकर मुझे रमाकान्तके लिए तुम्हे रास्ता साफ करना है। उसके पत्रके लिए कुछ नयी चीजें भी लिखूँगा।

स्टोर्सका नाम 'सर्वजन सरप्लस स्टोर्स' रखना अधिक ठीक होगा।

-जिस्ट्री हो जायेगी ।

आशा है, तुम्हारे ढाई वर्ष पहलेके दुःख और हँसोका उत्तर भी दे पाया हूँ ।

१-४-१९५४] तुम्हारा
धीरज

× × ×

'सर्वजन सरप्लस स्टोर्स'की फाइलोमे-से ऊपरके सत्रह पत्र छाँट कर प्रकाशित कर रहा हूँ। इन १७ पत्रोमे उसके प्रारम्भ, विकास और अभिप्राय की अति रोचक कहानी बहुत कुछ आ जाती है। 'सर्वजन सरप्लस स्टोर्स'मे हमारे आजके सामाजिक प्रच्छालनके लिए एक प्रेरणा है और सकेत है। इन पत्रोके प्रकाशनकी अनुमतिके लिए मै अपने आदरणीय मित्र श्री भीमसेन शर्माका आभारी हूँ ।

सरप्लस स्टोर्सके पाँच विभागोंमें-से चार—सेल, क्लियरेंस सेल, कमीशन सेल और नीलाम विभागोंका बैलेंस शीट तैयार है, पांचवें खरीद विभागको तैयार होनेमें एक सप्ताह लग जायेगा। पाँचों इकट्ठे तुम्हारे पास भेजूँगा। पिछले वर्षके मुकाबले इस साल लगभग दूनी रफ्तारसे स्टोर्सका लाभ बढ़ा है। इस वर्ष सवा लाखकी मालियतपर लगभग तेईस हजारका मुनाफा है। इस वर्षके ग्राहकोंकी संख्या इक्कीस हजारसे ऊपर पहुँच गयी है और मध्य-वर्गके सवा बारह-सौ व्यक्ति हमारे स्थायी सदस्य, ग्राहक और सप्लायर हैं। इन सवा बारह-सौ परिवारोंने सादे और सुथरे जीवनकी जो प्रेरणा स्टोर्सकी योजनासे ली है और अपनी आर्थिक व्यवस्थामें जो अत्यन्त सुविधाजनक क्रान्ति की है वह हमारी बहुत बड़ी सफलता है। इस योजनाका प्रभाव समाजमें बहुत दूर तक पड़ा है। मनुष्यकी आर्थिक सुव्यवस्थितता, आर्थिक स्वतन्त्रता और निश्चिन्तता तथा आर्थिक संक्षिप्तता और सादगीका सम्बन्ध उसके ऊँचेसे-ऊँचे आचारिक और आध्यात्मिक जीवनसे है और एक तरहसे यही उसकी आधारशिला है। यही देखकर मैंने इस योजनाको प्रारम्भ किया था।

अब आखिरी बात। इस स्टोर्सका काम इस वर्षसे तुम्हें सम्हालना है। शीघ्र ही तुम्हे यहाँ लाकर मैं इसका मालिकाना अधिकार तुम्हारे नाम लिख दूँगा। तुमसे अच्छा पात्र दूसरा कोई नहीं है। लिमिटेड कम्पनी झगड़ेकी चीज होगी। दो-सौ रुपये मासिकपर तुम्हारी नौकरी करके मैं लोगोंसे चीजें खरीदनेका काम जारी रखूँगा। तुम ठीक कहते हो मैं दूसरोंका खून चूसनेमें एक्सपर्ट हूँ। और जिसमें एक्सपर्ट हूँ उस कामको जारी रखना मेरा स्वधर्म है। तुम यह भी जान गये होगे कि मैं एक ऐसी 'जोंक' हूँ जो स्वतन्त्र नहीं, बल्कि एक कुशल, सहृदय और ईमानदार हकीमके कब्जेमें रहकर काम करती है। स्टोर्ससे हलका होकर मुझे रमाकान्तके लिए कुछ रास्ता साफ करना है। उसके पत्रके लिए कुछ नयी चीजें भी लिखूँगा।

स्टोर्सका नाम 'सर्वजन सरप्लस स्टोर्स' रखना अधिक ठीक होगा।

-जिस्ट्री हो जायेगी ।

आशा है, तुम्हारे ढाई वर्ष पहलेके दु ख और हँसीका उत्तर भी दे पाया हूँ ।

१-४-१९५४]

तुम्हारा
धीरज

× × ×

'सर्वजन सरप्लस स्टोर्स'की फाइलोमे-से ऊपरके सत्रह पत्र छाँट कर प्रकाशित कर रहा हूँ। इन १७ पत्रोमे उसके प्रारम्भ, विकास और अभिप्राय की अति रोचक कहानी बहुत कुछ आ जाती है। 'सर्वजन सरप्लस स्टोर्स'मे हमारे आजके सामाजिक प्रच्छालनके लिए एक प्रेरणा है और सकेत है। इन पत्रोके प्रकाशनकी अनुमतिके लिए मै अपने आदरणीय मित्र श्री भीमसेन शर्माका आभारी हूँ ।
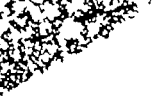
हाथ किसी और के हाथमे है—ऐसेके हाथमें, जिसे यह सहन नही हो सकता कि कोई दूसरा तुम्हारी छायाका भी स्पर्श करे। यह सामाजिक मर्यादाकी प्रचलित परम्परा है। तब इतना ही सन्तोष पर्याप्त है कि तुमने मुझे अपना प्यार दिया है और मैंने तुम्हें अपना। और परिचय पूछनेकी भी कोई आवश्यकता थी ? क्या इतना ही यथेष्ट नही है कि तुम और मैं जीवन-सागरकी दो ऐसी लहरें हैं जिनमें एक-दूसरेके प्रति आकृष्ट होनेकी क्षमता है और उस क्षमताके व्यवहारका हमे अवसर भी मिला है। धैर्यके पांवो चलकर अपने अन्तस्में ही तुम भी मेरा प्यार स्वीकार करो।

तुम्हारा
विजन

तीसरा पत्र—आशाका पत्र विजनके नाम

मेरे विजन,

क्या तुम मेरी पीडा नही देखते ? मैं हार गयी हूँ। उससे नहीं जीत पायी। मूल आधारकी बात जानकर, कह कर, भी तुम उसे टाल देना चाहते हो। तुम समर्थ होगे। मेरी पीडा तुम्हारी पीडा नहीं है। बन्धनसे यह आकर्षण अधिक सबल है। कोई उपाय नही है ?

तुम्हारी
आशा

चौथा पत्र—विजनका पत्र आशाके नाम

मेरी आशा,

मैं भी विचलित हूँ। तुम्हारी पीडा मेरी भी है। भौतिकताकी जिस स्थितिमे हम-तुम है उसमें मिलनका भी अवलम्ब चाहिए ही। प्रयत्न कर रहा हूँ। परिणाम तुम्हारे सामने आयेगा। धैर्य रखना।

तुम्हारा
विजन

छठा पन्ना—सजयकी टिप्पणी तन्त्रालयके नाम (तन्त्रालय वह विभाग है जिसमें मनुष्य और प्रकृतिकी इस भूलोकपर बहनेवाली स्थूल और सूक्ष्म शक्तियोंका लेखा रखा जाता है।)

आशा और विजनके बीच आकर्षणका घनत्व सीधे अगिरसको सूचित करें।

सजय

तन्त्रालयकी टिप्पणी अगिरसके नाम

मध्य रेखा ३७ ८२८७२३० कोटि अणु स्पन्दन।

तन्त्रालय

अगिरसकी टिप्पणी सजयके नाम

यह मध्य मानवके आकर्षणका अठतीस गुना और विकसित सौन्दर्योपासनाका भी लगभग तिगुना है। इनके सम्पर्कका कुछ पूर्व इतिहास भी हो सकता है। अतीतालयसे पूछिए।

अगिरस

सजयकी टिप्पणी अतीतालयके नाम (अतीतालय मानवीय सम्पर्कोंका वह विभाग है जिसमें मनुष्योंके जन्म-जन्मान्तरोंके लेखे सुरक्षित रखे जाते हैं।)

कृपया विवरण दें। सीधे अगिरसको।

सजय

अतीतालयकी टिप्पणी अगिरसके नाम

ईसवी सन् ८५२ में (लगभग ११ सौ वर्ष पूर्व) ये दोनों एक दिन-रातके लिए मिले थे। मिस्र देशमें आशा एक डाकू सरदारकी लड़की थी और विजन एक नगरवासी गृहस्थ साधु। वह डाका भी डालती थी और अपने दलके घायलोंकी चिकित्सा भी करती थी। साधुकी निर्वैर उदार भावनासे प्रभावित होकर उसने अपने दल-द्वारा आहत साधुकी पत्नीका चौबीस घण्टे रुककर उपचार किया था, और उपचारके बदले साधका

जिसमे आवश्यकतासे अधिक हृदयका रक्त जले । शुभेपितामे सदयताका भी स्थान रहने दो। सम्भव है विजन उस स्थितिमे आ गया हो कि माँगकी एक पूर्तिपर तृप्त होकर आगे बढ सकता हो। इसके पक्षमे या विपरीत कोई घटना हो तो कृपया सूचित करो । कुछ आशाकी बात भी ।

अंगिरस

आठवाँ पन्ना—वीरभद्रकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

मेरी पूर्व टिप्पणीमे अनुचित कठोरता थी, देख चुका हूँ । विजन एकावसरी पूर्तिपर सन्तुष्ट होनेमे समर्थ हुआ है, निकट भूतमे पहली वार अपने परम प्रिय दिवगत बन्धुके मिलनपर। आशा नवागता है। मिलन और अमिलन दोनो उसके लिए उद्वेग-जनक रहेंगे। किन्तु विजनका सम्पर्क उसे प्रगतिकी दिशा दे सकता है।

वीरभद्र

अंगिरसकी टिप्पणी कर्मालयके नाम (कर्मालय प्रकृतिका वह विभाग है जिसमें मनुष्यको प्राप्त होनेवाले सुखो-दु खोंकी व्यवस्था की जाती है।)

विजन और आशाकी इस इच्छाकी पूर्तिमे उनके पूर्व कर्मोकी कोई वाधा हो तो कृपया सूचित करें।

अंगिरस

कर्मालयकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

कोई वाधा नही । पक्षमे भी अभी कोई सयोग नही । उनके कुछ सुख-कर्मोके अग्रिम भुगतानकी व्यवस्था कर यह इच्छा पूरी की जा सकती है। मर्यादालयकी अनुमति ले ली जाये ।

कर्मालय

अंगिरसकी टिप्पणी मर्यादालयके नाम (मर्यादालय मानव-व्यवस्थाका वह विभाग है जिसमें समय-विशेषकी आवश्यकतानुसार सीमाओं, मान्यताओं और प्रवृत्तियोंका सरक्षण किया जाता है।)

जिसमे आवश्यकतासे अधिक हृदयका रक्त जले। शुभैषितामे सदयताका भी स्थान रहने दो। सम्भव है विजन उस स्थितिमे आ गया हो कि माँगकी एक पूर्तिपर तृप्त होकर आगे वढ सकता हो। इसके पक्षमे या विपरीत कोई घटना हो तो कृपया सूचित करो। कुछ आशाकी वात भी।

अंगिरस

आठवाँ पन्ना—वीरभद्रकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

मेरी पूर्व टिप्पणीमे अनुचित कठोरता थी, देख चुका हूँ। विजन एकावसरी पूर्तिपर सन्तुष्ट होनेमे समर्थ हुआ है, निकट भूतमे पहली वार अपने परम प्रिय दिवगत वन्धुके मिलनपर। आशा नवागता है। मिलन और अमिलन दोनो उसके लिए उद्वेग-जनक रहेंगे। किन्तु विजनका सम्पर्क उसे प्रगतिकी दिशा दे सकता है।

वीरभद्र

अंगिरसकी टिप्पणी कर्मालयके नाम (कर्मालय प्रकृतिका वह विभाग है जिसमें मनुष्यको प्राप्त होनेवाले सुखों-दुःखोंकी व्यवस्था की जाती है।)

विजन और आशाको इस इच्छाकी पूर्तिमे उनके पूर्व कर्मोंकी कोई वाधा हो तो कृपया सूचित करें।

अंगिरस

कर्मालयकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

कोई वाधा नही। पक्षमें भी अभी कोई सयोग नही। उनके कुछ सुख-कर्मोंके अग्रिम भुगतानकी व्यवस्था कर यह इच्छा पूरी की जा सकती है। मर्यादालयकी अनुमति ले ली जाये।

कर्मालय

अंगिरसकी टिप्पणी मर्यादालयके नाम (मर्यादालय मानव-व्यवस्थाका वह विभाग है जिसमें समय-विशेषकी आवश्यकतानुसार सीमाओं, मान्यताओं और प्रवृत्तियोंको सरक्षण दिया जाता है।)

जिसमे आवश्यकतासे अधिक हृदयका रक्त जले। शुभैषितामे सदयताका भी स्थान रहने दो। सम्भव है विजन उस स्थितिमे आ गया हो कि मांगकी एक पूर्तिपर तृप्त होकर आगे बढ सकता हो। इसके पक्षमे या विपरीत कोई घटना हो तो कृपया सूचित करो। कुछ आशाकी बात भी।

अगिरस

आठवॉ पन्ना—वीरभद्रकी टिप्पणी अगिरसके नाम

मेरी पूर्व टिप्पणीमें अनुचित कठोरता थी, देख चुका हूं। विजन एकावनरी पूर्तिपर सन्तुष्ट होनेमे समर्थ हुआ है, निकट भूतमे पहली वार अपने परम प्रिय दिवगत बन्धुके मिलनपर। आशा नवागता है। मिलन और अमिलन दोनो उसके लिए उद्वेग-जनक रहेंगे। किन्तु विजनका सम्पर्क उसे प्रगतिकी दिशा दे सकता है।

वीरभद्र

अगिरसकी टिप्पणी कर्मालयके नाम (कर्मालय प्रकृतिका वह विभाग है जिसमें मनुष्यको प्राप्त होनेवाले सुखो-दुखोंकी व्यवस्था की जाती है।)

विजन और आशाकी इस इच्छाकी पूर्तिमे उनके पूर्व कर्मोंकी कोई बाधा हो तो कृपया सूचित करें।

अगिरस

कर्मालयकी टिप्पणी अगिरसके नाम

कोई बाधा नही। पक्षमें भी अभी कोई सयोग नही। उनके कुछ सुख-कर्मोके अग्रिम भुगतानकी व्यवस्था कर यह इच्छा पूरी की जा सकती है। मर्यादालयकी अनुमति ले ली जाये।

कर्मालय

अगिरसकी टिप्पणी मर्यादालयके नाम (मर्यादालय मानव-व्यवस्थाका वह विभाग है जिसमें समय-विशेषकी आवश्यकतानुसार सीमाओं, मान्यताओं और प्रवृत्तियोंका सरक्षण किया जाता है।)

जिसमें आवश्यकतासे अधिक हृदयका रक्त जले। शुभैपितामे सदयताका भी स्थान रहने दो। सम्भव है विजन उस स्थितिमे आ गया हो कि माँगकी एक पूर्तिपर तृप्त होकर आगे बढ सकता हो। इसके पक्षमे या विपरीत कोई घटना हो तो कृपया सूचित करो। कुछ आशाकी बात भी।

अंगिरस

आठवॉ पन्ना—वीरभद्रकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

मेरी पूर्व टिप्पणीमें अनुचित कठोरता थी, देख चुका हूं। विजन एकावसरी पूर्तिपर सन्तुष्ट होनेमे समर्थ हुआ है, निकट भूतमे पहली बार अपने परम प्रिय दिवगत बन्धुके मिलनपर। आशा नवागता है। मिलन और अमिलन दोनो उसके लिए उद्वेग-जनक रहेंगे। किन्तु विजनका सम्पर्क उसे प्रगतिकी दिशा दे सकता है।

वीरभद्र

अंगिरसकी टिप्पणी कर्मालयके नाम (कर्मालय प्रकृतिका वह विभाग है जिसमें मनुष्यको प्राप्त होनेवाले सुखो-दु खोकी व्यवस्था की जाती है।)

विजन और आशाकी इस इच्छाकी पूर्तिमे उनके पूर्व कर्मोंकी कोई बाधा हो तो कृपया सूचित करें।

अंगिरस

कर्मालयकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

कोई बाधा नही। पक्षमें भी अभी कोई सयोग नही। उनके कुछ सुखकर्मोके अग्रिम भुगतानकी व्यवस्था कर यह इच्छा पूरी की जा सकती है। मर्यादालयकी अनुमति ले ली जाये।

कर्मालय

अंगिरसकी टिप्पणी मर्यादालयके नाम (मर्यादालय मानव-व्यवस्थाका वह विभाग है जिसमें समय-विशेषकी आवश्यकतानुसार सीमाओ, मान्यताओं और प्रवृत्तियोंको सरक्षण दिया जाता है।)

जिसे उसने अपने एक कहानीकार मित्रको लिख भेजनेका निश्चय किया है। वह समझा है कि यह केवल एक रोचक कहानी लिखनेकी सामग्री हो सकती है, उसके जैसे प्रतिष्ठित, कुलीन परिवारोमे व्यवहृत होनेकी कदापि नही। मै आज अपने पिछले अपूर्त कार्योमे अधिक व्यस्त रहूँगा।

शुभ्रचेता

चेतनालयकी टिप्पणी अगिरसके नाम

ऊपरकी टिप्पणी देखें। हमारे विभागमे कार्यकर्ताओकी बहुत कमी है और इसीलिए हमारे सहायक असाध्य श्रमकी सीमा तक व्यस्त हैं। अकेले शुभ्रचेताको जितने बडे क्षेत्रमे काम करना पडता है उसमे कमसे-कम उस जैसे दो और प्रेरकोकी आवश्यकता है। चेतनालयके हमारे भारतीय विभागमे कुल ११० दीक्षित प्रेरक है, जबकि यह सख्या तुरन्त ही कमसे कम दुगुनी कर दी जानी चाहिए। हमने नियुक्ति विभागको आवेदन भेजा है और व्यवस्थाके सभी, वासठो विभागोको भी एक निवेदन परिपत्र भेजकर प्रार्थना कर रहे है कि वे सभी अपने विभागोसे कुछ कार्यकर्ता हमे दे। आपका भावनालय विशेष रूपमे हमारी सहायता कर सकता है। वीरभद्र, उज्ज्वल और कनिष्ठको यदि आप हमारे विभागको दे सकें तो हम बहुत समर्थ होगे। आशा और विजनके सम्बन्धमें हमारा प्रयत्न चलेगा।

चेतनालय

ग्यारहवॉ पन्ना—अगिरसकी टिप्पणी सजयके नाम

चेतनालयकी मांग सर्वथा उचित है। उज्ज्वल और कनिष्ठकी अगली खण्ड-दीक्षा प्रस्तुत दशकके अन्तमें आ रही है। उन्हें दस वर्ष पीछे और वीरभद्रको तुरन्त ही हम दे सकते हैं। वीरभद्रका भारतके तरुण लेखक-चिन्तक-वर्गके शताधिक व्यक्तियोसे सम्पर्क रहा है। वह उनकी लेखनी और वाणीको दिशा दे सकता है। भूख, प्यास, निद्रा तथा योनि-भेद-गत चर्मेन्द्रिक स्पर्शकी तुष्टि मनुष्यकी प्राथमिक आवश्यकताएँ है तो दर्शन और चुम्बन उसके भाव-विकासकी माध्यमिक आवश्यकताओमें हैं। इनसे मिलने-

चेतनालयकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

धन्यवाद। आवश्यक वैधानिक काररवाई की जा रही है।

चेतनालय

बारहवाँ पन्ना—कर्मालयकी टिप्पणी अंगिरसके नाम

आशाके श्वसुरको एक सान्घातिक घटनाका स्पर्श देकर मृत्यु-सकटसे उबारना है। हम व्यवस्था कर रहे हैं कि कारकी यात्रामे आशा अपने श्वसुरके साथ हो और विजन घटना-स्थलपर पहुँच कर उनकी रक्षा करे। इन दोनोंके अभीष्ट मिलनका बाईस घण्टेके भीतर सुयोग जुट जायेगा। सूचनार्थ।

कर्मालय

तेरहवाँ पन्ना—आशाका पत्र विजनके नाम

मेरे विजन,

वह क्या था ? कोई दैवी चमत्कार या स्वप्न ? उथली नदियोमे ऐसी अचानक बाढ आती मैंने पहले कभी नही देखी-सुनी थी। तुम हमारे प्राण-रक्षक बनकर वहाँ कैसे पहुँचे—यह भगवान्की असाधारण माया थी। कारके पानीमें उलटते-उलटते तुमने मेरे श्वसुरको थामकर सडकपर फेंक दिया और फिर मुझे कारके भीतरसे अपनी बाँहोमें भरकर बाहर निकाल लाये। चोट मुझे तनिक भी नही आयी थी, भय भी नही लगा था। मेरा शरीर तुम्हारी भुजाओमे था, होठ होठोमे, आँखे आँखोमे। इसी स्थितिमे तुमने मुझे पानीसे उठाकर नावोंके उस नीचे पुलपर रख दिया। मेरे श्वसुर देख रहे थे, कितने ही यात्री और मल्लाह देख रहे थे किन्तु उस प्रगाढ आलिंगनमें बाधा डालनेका ध्यान किसीको नही था। मेरे श्वसुरकी आँखोमे कोई विरोध नही, तुम्हारे प्रति कृतज्ञता और आनन्दके ही आँसू थे। उस समय लगा था कि तुम्हारा वह चुम्बन युग-व्यापी था, किन्तु अब याद करती हूँ कि वह क्षण-भर भी नही टिका। यहाँ घरमे सब कहते है कि वह एक बहुत बडे प्राण-सकटसे मुक्तिकी घटना थी, मुझे लगता है कि स्वप्न

वे स्वर्गसे लिखते हैं

प्रिय स्वजनो,

इस पत्रको पाकर तुम्हें बडा आश्चर्य होगा, और फिर उतना ही अविश्वास। लेकिन यदि तुम्हारे हृदयोमें हमारे लिए सच्चे स्नेहका तनिक भी पुट रहा होगा तो हमें आशा है कि इस पत्र-द्वारा भेजे हमारे स्नेह और सन्देशको तुम ग्रहण कर लोगे।

हमे याद है, हमारे मां-बाप और परिवारके लोग तब सप्ताह-भर रोये थे और महीनो तक हमारी कहानी पडोस और सारे नगरकी जबानपर थी। देशके बीसियो अखबारोमे वह छपी थी। लेकिन उसमे एक बात गलत थी। आत्म-हत्या हम दोनोने नही की, मेरी मृत्युके बाद केवल मेरी प्रेमिकाने की थी। जिस गाडीमें मेरी प्रेमिकाकी बारात आ रही थी उसे स्टेशनसे आधा मील पहले रोककर मैं बारातवालोको ट्रेनके हजार यात्रियो के सामने बताना चाहता था कि वे किसी लडकीको ब्याहने नही, डाका डालने जा रहे हैं, यह विवाह लडकीकी घोर अनिच्छा और विरोधके बावजूद किया जा रहा है। मेरा एक मित्र पहलेसे ही उस गाडीमे था और यह तय था कि वह उस जगह जंजीर खीचकर गाडीको रोक देगा। लेकिन वह चूक गया। मैं निश्चित स्थानपर था। मुझे लगा कि गाडी रुक रही है, रुक रही है। इसीलिए मैं इञ्जनके बिलकुल पास आ गया था। गाडी अपनी रफ्तारपर थी। यही चूक मेरी मृत्युका कारण हुई। खबर फैल गयी कि मैंने रेलके नीचे कटकर आत्म-हत्या कर ली है।

मेरी प्रेमिकाको जब यह समाचार मिला तो उसका दर्द बांध तोड गया। विष खाकर उसने आत्म-हत्या कर ली।

कितने प्रेमी और कृपालु, हो तुम लोग, ओ दुनियावालो! तुम जिसे

यह मनुष्योकी ही एक वस्ती है—उन मनुष्योकी जिन्होने हाड-मासका शरीर उतार दिया है और जिन्हे तुम मरा हुआ कहते हो। लेकिन मरकर कोई भी मनुष्य मानव-जातिसे खारिज नहीं हो जाता। वह तव भी मनुष्य ही रहता है, मानव-जातिका एक स्थायी अग। मानव-जातिकी जन-सख्या इतनी वडी है कि उसका एक वहुत छोटा अश ही एक समयमें पृथ्वीपर शरीर लेकर रहता है। शेष जनोको स्थूल शरीरके विना स्वर्गलोककी वस्तियोमे रहना पडता है। यह स्वर्ग पृथ्वीसे वाहर या दूर नही है, यह पृथ्वीका ही सूक्ष्म अग है। कभी सशरीर, कभी अशरीर, हम सभी धरतीके प्रलय-काल तकके लिए इस धरतीके ही पुत्र है। स्वर्गके इस प्रदेशकी कुछ ही वस्तियाँ हमने अभी देखी हैं। फिर भी यहाँके उन्मुक्त सुख और सुविधाओकी पृथ्वीके सँकरे जीवनसे तुलना नही की जा सकती।

पहली वात जो हमें कहनी है वह यह है कि हमारा-तुम्हारा नाता अटूट है, लेकिन हम तुम्हारे पुत्र-पुत्री नही हैं। पिता पुत्र या पति-पत्नीके जैसे नाते झूठे है। वास्तविक नाता हम सभीका वन्धुत्व या मित्रताका या प्रिय और प्रेमीका है। पिता-पुत्री और पति-पत्नीका नाता एक अल्पकालिक सम-झौता है और उसका व्यावहारिक जीवनमे केवल एक सीमित और सामयिक उपयोग है। तुम इस पत्रको अपने पुत्र या पुत्रीका नही, वल्कि दो ऐसे स्वजनोका पत्र मानकर पढो जो इस समय तुमसे कुछ अधिक ऊँचाईपर खडे हुए कुछ अधिक दूर तकका दृश्य देख सकते है। एक दिन तुम्हे भी यहाँ आना है, और जवतक पृथ्वीपर दूसरा शरीर धारण करनेका अवसर न आये तवतक यही रहना है। इसलिए आवश्यक है कि तुम यहाँ रहते हुए अपनी आँखें इतनी खोल लो कि यहाँके प्रकाश, सौन्दर्य और आनन्दको ग्रहण कर सको।

यहाँका जीवन सुख और स्वतन्त्रताका जीवन है, फिर भी कुछ वस्तियाँ यहाँ उन लोगोके लिए भी वसायी गयी है जो ऐसे जीवनका उपभोग नही करना चाहते। पृथ्वीपर जो लोग जीवन-भर वन्धनो और रूढियोमे रहकर

प्रेरणाओ और विचारोंके रूपमे नया प्रकाश यहांसे ले जाते है और उन्हे अपनी रचनाओ और विचारोमें व्यक्त करते है। आखिर तो हम लोग दुनियावालोके ही बड़े भाई है—स्थूल इन्द्रियोकी सीमाओसे मुक्त, इसीलिए कुछ अधिक देखनेवाले और कुछ अधिक समझदार। मनुष्यके विकासका दुनियामे भी साधन यही है कि बडे और अधिक जाननेवाले छोटे और कम जाननेवालोको सिखाते है। उसी परम्पराके अनुसार यहांके निवासी वहांके निवासियोके शिक्षक है। यह बात हम दोनो व्यक्तिगत रूपमे अपने लिए नही कह रहे हैं—हम तो अभी यहांके बच्चे ही हैं। अभी हमने देखा-समझा ही कितना है! हमारा काम तो अभी सीखनेका ही अधिक है। मानव-जीवनके विविध विभागोकी शिक्षाओसे सम्बन्ध रखनेवाले बीसियो स्कूल यहां है। उन्हीमे-से दो-तीनमे हम दोनो भी पढने जाते है। हमारे जीवनका अन्त चूंकि प्रेमकी तीव्रतामें हुआ है इसलिए प्रेमके विषयमे ही हमारी सबसे अधिक रुचि है और हम प्रमुखतया प्रेम-सम्बन्धी स्कूलके छात्र है। प्रेम ही सम्भवत मानव-जीवनके सभी क्षेत्रोमें सबसे अधिक रोचक और महत्त्वपूर्ण विषय है।

यहां आते ही हम दोनोका ऐसा प्यार-भरा स्वागत हुआ है जैसे किसी बडे परिवारके दो बच्चे परदेशसे कुछ सयाने होकर आये हो। इस परिवारमें बडे-बूढे भी है, बराबरके भी और कुछ हमसे छोटे भी। यहां आते ही हमारे नये नाम रखे गये है। मेरा अमृत और मेरी सगिनीका वारुणी। उसकी आंखोमे अब भी सचमुच प्रेमकी मदिरा-सी छलकती रहती है, इसलिए उसका यह नाम बिलकुल ठीक है। साथी हमे कभी-कभी हँसीमे चिढाते है कि अमृत और मदिराका साथ अधिक दिन नही चल सकता। हमारे शरीर बिलकुल पहले-जैसे है, अलबत्ता उनसे अधिक निखरे हुए, स्वस्थ और विशेप सुन्दर। अपने सूक्ष्म शरीरोसे हम उसी उम्रके दीखते है जिसके अभी पृथ्वीपर थे। हम खाने-पीनेका आनन्द लेते है, यद्यपि यह आहार सूक्ष्म कोटिका है। हम मनचाहे रग-विरगे वस्त्र पहनते है और आकाशमे

ही हुआ है और वह भी इसलिए कि तुम उसे विकसित होनेका पूरा अवसर दो। प्रेमकी प्रवृत्ति विकासकी सबसे बडी प्रेरणा है और उसे ही तुम दबाकर, सडाकर कलुषित कर देते हो। जिस प्रेमकी पाठशालामे हम दोनो पढने जाते है उसकी अगली कक्षाओके सामने एक बहुत बडा और कठिन माना जानेवाला काम यह है कि दुनियाके पिताओ और पतियोकी अत्यन्त संकरी और दरिद्र मनोवृत्तिको कैसे सुधारा जाये। हमे उन ऊँची कक्षाओके पाठो और अभ्यासोका ज्ञान अभी नही है, फिर भी इतना हमने सुना है कि अधिकाश भारतीय पिताओ और पतियोकी मनोवृत्ति मानव-जातिके लिए एक बडी समस्या है और इस सम्बन्धमे प्रकाश डालनेके लिए पृथ्वीके ही कुछ विचारशील व्यक्ति तैयार किये जा रहे है।

वहाँकी भाँति स्त्री-पुरुषका भेद यहाँ भी है और उसकी सरसता बडी गहरी है। प्रेममे ईर्ष्या या विकार-जैसी कोई वस्तु यहाँ नही है और इसलिए प्रेम-मिलनका कोई भी रूप बुरा नही समझा जाता। हम दोनोके पारस्परिक प्रेमको हमारे साथी और विशेषकर बडे-बुजुर्ग बडी प्रशसा और मुग्धताकी दृष्टिसे देखते है। यह सब जो विवरण हम यहाँका दे रहे है वह ऐसा नही कि दुनियामें किसीको ज्ञात हो न हो। ऐसे बहुत-से सशरीर जीवित मनुष्य पृथ्वीपर है जो यहाँकी परिस्थितियोको जानते है, हम लोगोमे आकर मिलते-जुलते है और ऐसा बहुत-सा साहित्य उन्होने लिखा है जिसमें यहाँकी इस-जैसी, और इनसे भी आगेकी बातोका सच्चा विवरण है। किन्तु तुम तो आँखें बन्द कर पैसा कमाने और पुराने, सडे-गले रीति-रिवाजोको मजबूत कर उन्हीके सहारे अपने संकरे दायरेमें वाहवाही लूटनेमे सन्तुष्ट हो। तुम्हें दुनियामें मौजूद इन वस्तुओकी खोज कैसे हो? तुम्हारे हृदयोमे कोमलता और सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो, यही शुभकामना हम तुम्हारे लिए कर सकते है।

स्वर्गका जीवन पूरा करके हमारा कुछ समयके लिए विछोह भी होगा और उसके बाद हम दोनो फिर एक ही समयमें पृथ्वीपर जन्म लेंगे।

हैं—इसी बातकी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करते हुए अपने हार्दिक प्रणामों और आशीर्वादोंके साथ हम यह पत्र समाप्त करते हैं ।

तुम्हारे अभिन्न

दो दिवंगत